फरवरी 2001

मूल्य : सात रुपये

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

ग्राम सभा : विकास की जीवित गंगा

आवश्यकता एक और हरित क्रांति की

प्रधानमंत्री द्वारा प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का शुभारम्भ

प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने दिसम्बर 2000 में नई दिल्ली में आयोजित एक सादे समारोह में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना का शुभारम्भ किया। इस अवसर पर केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री श्री वेंकैया नायडू, खाद्य, उपभोक्ता और सार्वजनिक वितरण मामलों के मंत्री श्री शांता कुमार और बड़ी संख्या में किसान उपस्थित थे।

प्रधानमंत्री ने इस योजना को आरम्भ किए जाने पर खुशी व्यक्त करते हुए कहा कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक–आर्थिक विकास में तेजी आएगी। उन्होंने इस योजना को समयबद्ध आधार पर पूरा करने की जरूरत पर जोर देते हुए बताया कि इसके लिए धन कई स्रोतों से उपलब्ध कराया जाएगा। उन्होंने कहा कि यह योजना केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना है और इसे समूचे देश में राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के सहयोग से लागू किया जाएगा।

प्रधानमंत्री ने कहा कि इस योजना को कुशलतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए क्योंकि इससे देश के एक लाख गांव सड़कों द्वारा जुड़ जाएंगे। उन्होंने कहा कि एक हजार से अधिक आबादी वाले सभी गांव अगले तीन वर्षों में और 500 से अधिक आबादी वाले सभी गांव सन् 2007 बारहमासी सड़कों द्वारा देश के अन्य मार्गों से जुड़ जाएंगे। इसके अलावा पांच लाख किलोमीटर लम्बी वर्तमान सड़कों की मरम्मत भी की जाएगी।

ग्रामीण विकास मंत्री श्री वेंकैया नायडू ने इस योजना की विशेषताओं का जिक्र करते हुए बताया कि योजना पर 60,000 करोड़ रुपये खर्च होंगे और इसमें कुशलता, पारदर्शिता और जवाबदेही को शामिल किया गया है।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 46 अंक 4
माघ–फाल्गुन 1922
फरवरी 2001

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
पी.सी. आहूजा

आवरण सज्जा
अलका नय्यर

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

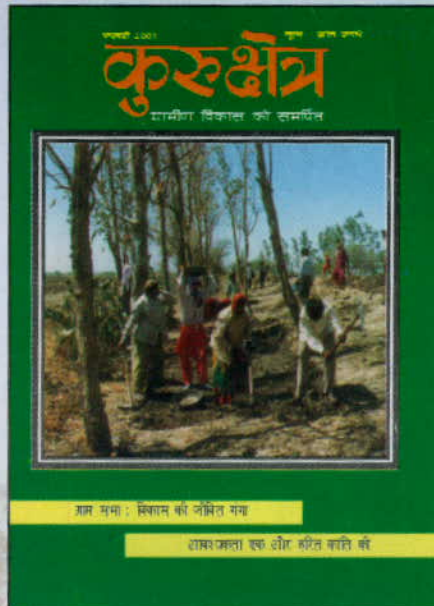

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

ग्राम सभा : विकास की जीवित गंगा	डा. दौलत राज थानवी	4
ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निवारण के विभिन्न कार्यक्रम	डा. शिवभूषण गुप्त	7
उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास में पंचायतों को अधिकार	डा. दीपा भास्कर दुबे	11
ग्यारहवें वित्त आयोग से पुरस्कृत स्थानीय निकाय	डा. राधे मोहन प्रसाद	13
ग्रामीण विकास और मीडिया	अनिल चमड़िया	15
ग्रामीण विकास की गति तेज करने में जन संचार माध्यमों की भूमिका	नवीन पंत	18
अंतराल (कहानी)	स्वाति तिवारी	21
आवश्यकता है एक और हरित क्रांति की	डा. एस.पी.एस. सिरोही	23
कृषि ऋण तथा ग्रामीण बैंक	प्रद्युमन कुमार	26
मध्य प्रदेश में शिक्षा गारंटी योजना : एक सार्थक कदम	डा. आशा शर्मा श्याम सिंह गौर	29
पर्यावरण तथा आर्थिक विकास में तालमेल की समस्या	डा. अधिकेश राय	33
जुगाड़ : ग्रामीण सड़कों का राजा	राजन मिश्रा	35
उचित ढंग से हो कूड़े–करकट का निपटान	डा. दिनेश मणि	37
किशोरावस्था शिक्षा : आज की आवश्यकता	सत्यपाल मलिक	40
ग्रामीण बेरोजगारों के लिए गोबर–गोमूत्र आधारित कुटीर उद्योग	अविनाश नागदंश	43
उज्जैन जिले में बंजर भूमि की बदलती तस्वीर	हरिशंकर शर्मा	45
बहुपयोगी लहसुन	जग नारायण	46
रेशम योजना से हजारों परिवारों को रोजगार	प्रो. बृजनाथ सिंह	48

पाठकों के विचार

'इंटरनेट' को परिभाषित करता है 'कुरुक्षेत्र'

'इंटरनेट' जिस प्रकार कम्प्यूटरों के आपसी जुड़ाव का एक संजाल है उसी प्रकार *'कुरुक्षेत्र'* भी शिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विकास, सामाजिक विकास सांस्कृतिक विकास, ग्रामीण विकास, इत्यादि के आपसी जुड़ाव का एक संजाल है। नवम्बर 2000 का अंक मेरे हाथों में है *'शिक्षा से ही सम्भव है ग्रामीण महिलाओं का विकास'* बहुत रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगा। यह शोध का विषय है कि 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से हमने महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण ग्राम पंचायत से लेकर जिला पंचायत तक सुनिश्चित तो कर दिया लेकिन ये अंगूठा छाप महिलाएं क्या सही निर्णय ले पा रही हैं? क्या वे किसी सफेदपोश के हाथ की कठपुतली बन कर नहीं रहेंगी? इसी तरह संसद और विधान सभा में क्या 30 प्रतिशत आरक्षण में ग्रामीण महिलाएं भागीदार हो पाएंगी। यानी दुनिया में जो भी देश प्रगति के पथ पर बढ़ा है वह सिर्फ आरक्षण से नहीं बल्कि शिक्षा और जागरूकता के माध्यम से आगे बढ़ा है। कहीं नारी–शिक्षा के अभाव में ग्राम समृद्धि का सपना अधूरा ही न रह जाए।

कुरुक्षेत्र के कुशल एवं उत्कृष्ट सम्पादन के लिए सम्पादकीय परिवार को बधाई। प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए भी यह बहुत उपयोगी पत्रिका है।

सुदर्शन सिंह यादव ग्रा. व पो.–नादी, जनपद–चन्दौली, 2321007

पत्रिका में ग्रामीण बच्चों का कालम होना चाहिए

कुरुक्षेत्र का नवम्बर 2000 अंक पढ़ने को मिला। पत्रिका में ग्रामीण क्षेत्रों पर सामग्री अति महत्वपूर्ण होती है। इस अंक का लेख–*शिक्षा से ही संभव है ग्रामीण महिलाओं*

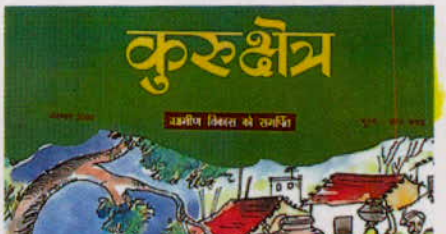

का विकास, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण विकास और *क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक,* लेख काफी रुचि पूर्ण लगे। कहानी–*नदी की बहती धार* बहुत पंसद आई।

पत्रिका में ग्रामीण बच्चों का भी एक कालम होना चाहिए जिसमें बाल रचनाएं प्रकाशित हों पत्रिका में लेखकों का पूरा पता भी प्रकाशित किया जाए.

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान, गोला बाजार, गोरखपुर–उ.प्र.

सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण विकास महत्वपूर्ण

भारत की करीब–करीब तीन चौथाई आबादी गावों में रहती है, इसलिए देश के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण विकास का मुद्दा अति महत्वपूर्ण है। प्रायः इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि *'कुरुक्षेत्र'* के नवम्बर अंक का *"शिक्षा से ही सम्भव है ग्रामीण महिलाओं का विकास"* लेखक डा. कृष्ण कुमार सिंह ने बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से सिद्ध कर दिया है कि नारी शिक्षा के बिना ग्रामीण विकास की बात महज पानी में कागज की नाव दौड़ाने के समान ही होगा। इसमें प्रयुक्त समकों से भी ये बातें प्रणामित होती हैं। नारी शिक्षा ही वह जड़ है जिसकी मजबूती पर ही ग्रामीण विकास जैसे बड़े वट वृक्ष का फैलाव होगा। यानी ग्रामीण विकास की एजेंसियों को नारी शिक्षा पर ही पूरी शक्ति का लगभग 50 प्रतिशत खर्च करना चाहिए। बदलाव की प्रक्रिया विकास की प्रविधि है। हमें अब पुरुष प्रधान रूढ़िवादी मानसिकता में बदलाव लाकर नारी (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र की) को शिक्षित एवं जागरूक करना होगा। एक नारी के शिक्षित होने से एक परिवार में बदलाव आएगा जबकि एक पुरुष के शिक्षित होने से एक व्यक्ति में बदलाव होगा, पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है।

"बड़ा ही उपयोगी है नीबू" रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लगा। *"नदी की बहती धार"* कहानी भी अच्छी लगी। यदि एक कविता को स्थान मिलता तो *'कुरुक्षेत्र'* में चार–चांद लग जाते। लेखकों से कुछ सवाल पूंछने की उत्कण्ठा होती है लेकिन पते के अभाव में यह भावना

मर जाती है।

विनोद कुमार सिंह, द्वारा भाजपा कार्यालय के नीचे (नवादा) भोजपुर (बिहार)

'कुरुक्षेत्र' यथार्थ निरूपण करने में सफल

'कुरुक्षेत्र' नवंबर अंक पढ़ा सभी आलेख प्रभावपूर्ण व विचारोत्तेजक थे, कहानी *'नदी की बहती धार'* ग्रामीण गरीबी और राजनेताओं की आज की स्वार्थपूर्ण राजनीति का यथार्थ निरूपण करने में पूर्णतः सफल है। लगता है आज सरकारी तंत्र, उसके कार्यालय, कार्यकर्त्ता सभी एक प्रजातांत्रिक राष्ट्र में 'प्रजा' और 'तंत्र' दोनों की सहभागिता अवरुद्ध करने पर डटे हैं। सत्य कड़ा होता है, पर उसे प्रकट न करना एक बड़ा अपराध है। आशा है आप यह पत्र प्रकाशित करेंगे।

उमेश चन्द्र राय
266,चौखंडी, कीडगंज–इलाहाबाद (उ.प्र.)
पिन कोड़– 211003

ग्रामीण समस्याओं की गवाह 'कुरुक्षेत्र'

मैंने *'कुरुक्षेत्र'* का नवम्बर 2000 अंक पढ़ा। ग्रामीण समस्याओं को पढ़कर नहीं, ग्रामीण समस्याओं के समाधान को पढ़कर खुशी हुई। छोटी–सी उम्र में ही बहुत सारी पत्रिकाओं को पढ़ने–समझने का अवसर मिला है। भारत माता जो कि गांवों में रहती है और किन–किन समस्याओं के बीच जीती–जागती है, 'कुरुक्षेत्र' भारतमाता को जानने–समझने का माध्यम है। दर्शन है।

सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक, बालश्रम संबंधी सभी ग्रामीण मानवीय समस्याओं से जिस प्रकार साक्षात् *'कुरुक्षेत्र'* ने कराया है, उस परिप्रेक्ष्य में मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह पत्रिका ग्रामीण उत्थान में मील का पत्थर साबित होगी। कहानी *'नदी की बहती धार'* के माध्यम से कहानीकार ने हरीराम के परिवार की जिन परिस्थितियों से अवगत कराया है, किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर देगी। इंसानी अंतर को मिटाने, बच्चों को निःशुल्क शिक्षा तथा बीमारों का फ्री इलाज कराने, गरीबों को पक्का घर बनवाने आदि का सब्जबाग दिखाकर वोट की राजनीति करने वाले राजनेताओं पर कहानीकार का व्यंग्य कसना भी सुकूनदायक लगा। इसके

अलावा समस्त लेख किसी–न–किसी तरह ग्रामीण समाज को प्रगति की राह पर ले जाने वाले हैं। ग्रामीण समस्याओं की गवाह बनी बेमिसाल पत्रिका *'कुरुक्षेत्र'* चांद बनकर उभरे, यही शुभकामना है, यही तमन्ना है।

–बालेन्द्र कुशवाहा 'सन्नी', सोढ़ना माधोपुर, मीनापुर, मुजफ्फरपुर, बिहार.

कुरुक्षेत्र अक्तूबर 2000 का वार्षिकांक पढ़ा। यदि हम वास्तव में राष्ट्र को समर्थ और सम्पन्न देखना चाहते हैं तो तीन–चौथाई आबादी जो गांवों में रहती है, को पिछड़ेपन एवं गरीबी से मुक्ति दिलानी होगी। ग्रामीण विकास मंत्रालय गरीबी के पूर्णतः उन्मूलन के लिए तथा तीव्र सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन कर रहा है। ग्रामवासियों को स्वच्छ पेयजल, बेघरों को घर, निरक्षरों को शिक्षा, तथा सड़कों को गांवों से जोड़ने की योजना को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों को सड़कों से जोड़ने की योजना सफल नहीं दिख रही है। सड़क के अभाव में उनका बाजार से अलग–थलग पड़ना स्वाभाविक है।

प्रो. कामता प्रसाद जी के आलेख से स्पष्ट लगता है कि आजादी के समय से ही सरकार द्वारा चलाए जा रहे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को वांछित सफलता नहीं मिली। अमीरी और गरीबी के बीच की गहरी खाई, गरीबों पर पर्याप्त खर्च नहीं होना, गरीबों को प्राप्त होने वाले धन की बन्दरबाट, भ्रष्टाचार, निजीकरण का दौर आदि गरीबी, उन्मूलन कार्यक्रम में बाधक रहे हैं।

प्रो. काबरा का कहना ठीक ही है कि वैश्वीकरण विश्व की कुछ गिनी–चुनी बड़ी कम्पनियों को ही लाभ पहुंचा रहे हैं। गरीबों की समस्या का समाधान का प्रावधान इसमें नहीं हो रहा है। वैश्वीकरण का उद्देश्य समानता पर व्यापार, निवेश तथा नई तकनीक को विकसित करना होना चाहिए तभी गांवों का कल्याण हो सकेगा।

कृपा शंकर जी ने गरीबी उन्मूलन की एक नेक सलाह दी है कि सरकार भूपतियों से जमीन खरीदकर गरीबों में बांटे जैसा कि जापान कर चुका है। इस नीति के कार्यान्वयन से अमीरों और गरीबों के बीच तनाव समाप्त होगा। नक्सली–शान्त होंगे। आपसी प्रेम बढ़ेगा। फलतः कुल उत्पादन में वृद्धि होगी। तब राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि होगी।

भारत डोगरा जी की भारतीय परम्परागत कला–कौशल को विकसित कर विकास करने की बात सराहनीय है। साथ ही अन्य लेखकों के आलेख भी प्रभावोत्पादक हैं।

डा. कृष्ण कुमार सिंह, गौरव ड्रैसेज, स्टेशन रोड, नवादा (आटा), भोजपुर (बिहार)

ग्राम सभा : विकास की जीवित गंगा

राजस्थान प्रदेश में ग्राम सभा दिवस के प्रसंग में

डा. दौलत राज थानवी*

वैदिक युगीन भारत में पंचायत प्रक्रिया में ग्रामवासियों की अहम् भूमिका रही है। उस समय समाज के समूहों ने पंचायतों के निर्णयों को स्वीकारा ही नहीं वरन् ग्राम पंचायत की प्रक्रिया को निर्धारित भी किया। इसे पूरे ग्रामीण समूहों के कल्याण और विकास के लिए जीवित गंगा माना। समयान्तर में ग्राम पंचायतों को पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया। इस जीवित गंगा से ग्राम समुदाय वंचित होने लगा। पूरे गांव के लोग मिल बैठकर मंथन करके अपने लिए सुविधाओं और कल्याण के लिए निर्णय करके कार्यों को निर्धारित करने और स्वयं का मूल्यांकन करते थे वह परंपरा खतम हो गई।

इस प्रकर की जीवित परम्परा को 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम की देखरेख और संचालन में ग्राम सभा की भूमिका से बहाल करने का प्रयास किया। इसके बावजूद 1952 से 1959 तक ग्राम पंचायतों और ग्राम सभाओं की भूमिका नहीं के बराबर रही। लोगों में पारस्परिक सामुदायिक विकास प्रक्रम (पा.सा.वि.प्र.) की कमजोरी रही। तब बलवतंराय मेहता कमेटी का गठन कर इनको जीवित करने का प्रयास किया गया। श्री मेहता ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना प्रस्तुत की। देश के पहले प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू इसे भारतीय परम्परा का नाम देना चाहते थे। उन्होंने उर्दू भाषा से पंचायती राज नाम दिया। यह नाम वार्तालाप विचार–विमर्श की प्रक्रिया को दर्शाता है। यह तथ्य पूर्व सामुदायिक विकास मंत्री एस. के. डे ने उद्घाटित करते हुए बताया कि उस समय कोई भी नेता ग्रामीणों को शक्ति और सत्ता सौंपने के पक्ष में नहीं था। डिवोल्यूसन आफ स्टेट औथोरिटी टू ग्रास रूट डेमोक्रेसी की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं हो सकी।

इससे स्पष्ट है कि 1952 और 1959 में ग्राम सभा केवल नाम मात्र की थी। श्री मेहता की सिफारिशें ग्राम सभाओं को शक्तिशाली स्तर नहीं दिला सकीं। ग्राम सभा के पास प्रशासनिक और शासकीय शक्तियां नहीं रहीं कि यह सभा अपने क्षेत्र की आवश्यकताओं की पहचान करने उसकी संपूर्ति के लिए संसाधनों की योजना तैयार करने और क्रियान्वित कर अपनी शासकीय प्रबंधनता का परिचय दे सके। 1965 से 1978 तक तेरह वर्षों तक राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव भी नहीं कराए गए। 1978 में पंचायतों के चुनाव कराए गए और ग्राम सभाओं को प्रशासनिक सत्ता भी दी गई। "अंत्योदय योजना" के अन्तर्गत राजस्थान से ग्राम सभाओं को गांव के सर्वाधिक गरीब की खोज करने का कार्य भी सौंपा गया। सर्वत्र प्रदेश में ग्राम सभाओं का आयोजन किया गया। गांव–गांव में ढोल थाली पीटी गई ताकि ग्रामीण जन एकत्रित हों। सरकारी अधिकारियों को भी वहां उपस्थित होकर ग्राम सभा के निर्णयों को प्रतिवेदन रूप में प्रस्तुत करने का दायित्व सौंपा गया। इस तरह 1978 में ग्राम सभाओं को राज सत्ता से प्रशासनिक शक्ति पहली बार मिली।

73वें संवैधानिक संशोधन पर बने विधेयक के अनुच्छेद 243 ए से स्पष्ट किया गया है कि पंचायत ग्राम सभा के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होगी जैसे कि राज्य सरकार विधानसभा के प्रति होती है।

गरीबों को विकास का लाभ दिलाने की इस व्यवस्था में ग्राम सभाओं का महत्व बढ़ गया। समन्वित ग्रामीण विकास और अनाज के बदले काम योजनाओं के प्रारम्भ होने के विकास से जुड़ी नौकरशाही और सरपंच ही मिलकर काम करने लगे। ग्राम सभा की भूमिका को फिर भुला दिया गया। पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत करने के लिए आदिक अलि, अशोक मेहता, गिरधारीलाल और लक्ष्मीमल सिंधवी समितियां बनीं और पूर्व युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भी इन समितियों की वैचारिक पृष्ठभूमि में नव पंचायत से ग्राम स्तर पर राज सत्ता को हस्तान्तरण करने का मानस बनाया। इसके लिए संसद में प्रस्तुत 64वां संवैधानिक संशोधन पारित नहीं हो सका। इन्हीं प्रयासों की श्रृंखला में 1972 में 73वां संवैधानिक संशोधन प्रस्तावित किया गया। पंचायती राज संस्थाओं को प्रजातंत्रीय व्यवस्था में धरातल स्तर की मजबूत संस्थाएं समझ कर ग्राम सभा को राजसत्ता से जोड़ा गया और संविधान द्वारा ग्राम सभाओं की पंचायती राज व्यवस्था संसद और राज्यों की विधान सभाओं की तरह स्थापित की गई। 73वें संवैधानिक संशोधन पर बने विधेयक के अनुच्छेद 243 ए से स्पष्ट किया गया है कि पंचायत ग्राम सभा के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होगी जैसे कि राज्य सराकर विधानसभा के प्रति होती है।

73वें संविधान संशोधन लागू होने से ग्राम सभाएं प्रशासनिक नियंत्रण सत्ता से काम करने की संवैधानिक संस्था बन गईं। भौगोलिक परिधि, स्वास्थ्य, जलप्रदाय और निर्माण संबंधित 29 सरकारी विभागों पर उन्हें अधिकार दिए गए। ग्राम सभा के अधिकारों में प्रति छः माह में पंचायतों द्वारा किए गए कार्यों का ब्यौरा प्राप्त करना, योजनाएं स्वीकृत करना, बजट स्वीकार करना प्रमुख थे। पंचायतों को उसके प्रति जवाबदेह बनाया गया। ग्राम सभाओं को इतने व्यापक अधिकार दिए गए पर ग्रामीण

* पूर्व प्रधानाचार्य.

जनता ने इसके प्रति अपेक्षित उत्साह नहीं दिखाया।

1997–98 में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की समीक्षा करने और 1998–99 के लिए गरीबी रेखा के नीचे जीवन वाले परिवारों की सूचियों को अंतिम रूप से प्रणामित करने के लिए राज्य में दिसम्बर 1997 और जनवरी 1998 में ग्राम सभाएं आयोजित की गईं। ग्राम सभाओं के आयोजन का एजेन्डा बनाने का निर्देश दिया गया। सभी व्यवस्थाएं हुईं परन्तु ग्राम में ढोल थाली नहीं बजी जैसी 1978–79 में बजती थी। जनता की भागीदारी कम रही। गांवों में सभाएं हुईं परन्तु सौ–पचास व्यक्ति भी उपस्थिति नहीं हो सके। मैंने डूंगरपुर जिले की तीन ग्राम सभाओं का अवलोकन किया। उदयपुर के सेवा मंदिर से भी विभिन्न ग्राम सभाओं का व्यापक अध्ययन किया। विभिन्न शिक्षाविदों ने भी इस प्रकार के अध्ययन से अपने को जोड़ा। *कुरुक्षेत्र* के अक्तूबर 1999 के अंक में प्रो. पी.सी. माथुर तथा अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों सहित सभी के विचारों को सार स्वरूप में देखने पर यही कहा जा सकता है कि सरपंच और ग्राम पंचायत प्रशासन की बैठक की व्यवस्था करने में पर्याप्त रुचि नहीं दिखाते। ढोल–थाली से ग्रामीण जनों को नहीं एकत्रित किया। ग्राम सेवकों ने रिपोर्ट तैयार की और गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले परिवारों की सूची को बहुत कम उपस्थिति पर सत्यापित कर दिया गया। इससे सभी ने यही कहा कि अधिकार दिए गए परन्तु जागरूकता की कमी की वजह से ग्राम सभा की बैठकें मात्र ओपचारिक रहीं।

पहली मई 1999 में राज्य सरकार ने ग्राम सभाओं की बैठकों की योजना बनाई। कार्यक्रम बना और सरकारी अधिकारी प्रतिनियुक्त हुए। एक मुख्य प्रशासनिक कार्य सौंपा गया –गांव में विद्यालय स्थापना के स्थान की पहचान करना, भवन बनाना और उसके लिए अध्यापक–अध्यापिकाएं भी नियुक्त करना। सामाजिक विज्ञान के अध्येताओं और पत्रकारों ने इन सभाओं पर अपनी टिप्पणियां लिखीं। शोध संस्थाओं ने भी कार्य किया। दक्षिण राजस्थान के छः जिलों में भी विशेष अध्ययन किया गया। *कुरुक्षेत्र* और अन्य पत्रिकाओं ने विस्तृत रिपोर्टों का प्रकाशन किया। इनका विश्लेषण करने पर निम्न तथ्य उभरे :

- दिसम्बर–जनवरी 1997–98 की तरह ग्रामसभाओं में लोगों की उपस्थिति कम रही। जनता की सहभागिता 5 प्रतिशत से भी कम आंकी गई।
- विद्यालयों के लिए स्थान और अध्यापकों का चयन नौकरशाही, सरपंचों और थोड़े से ग्रामीण जनों की उपस्थिति में हुआ।
- प्रधान तथा जिला प्रमुख, विधायक और मंत्री एक दो स्थानों पर उद्घाटन हेतु गए।
- महिलाओं की भागीदारी नहीं के बराबर थी।
- छायादार स्थान न होने और जल प्रबंध की कमी के समाचार प्रकाशित हुए।

इस तरह ग्राम सभाओं का आयोजन जरूर हुआ परन्तु जन सहभागिता उत्साहजनक नहीं रही। ग्राम के सरकारी कर्मचारी भी अपनी इच्छा से इन सभाओं में नहीं गए।

ग्राम सभाओं के प्रति जन उत्साह, विशेषकर महिलाओं का उत्साह, कम क्यों रहता है? इस तथ्य पर जनवरी–फरवरी 2000 में सम्पन्न पंचायतीराज चुनावों में मतदाताओं से प्रश्नोत्तर

किए गए। मतदाताओं ने 65 प्रतिशत मतदान किया। महिलाओं ने 70 प्रतिशत तक मतदान किया था। मतदाताओं ने बताया कि चुनावों के समय, गाड़ी, जीप और ट्रैक्टर ट्रौली से पंच व सरपंच उन्हें मतदान केन्द्रों तक ले जाते हैं। खाना भी खिलाते हैं परन्तु ग्राम सभाओं में उनको इस तरह बुलाया नहीं जाता जिससे वे रुचि नहीं लेते। वे कहते हैं कि वहां पर सामाजिक संरचना से ऊंच–नीच का विचार रहता है। महिलाएं खड़ी रहती हैं सरपंच और गांव के सम्पन्न लोग ही निर्णय करते हैं। बहुत से मतदाताओं का यह भी कहना था कि संसाधन तो हैं नहीं विकास होता नहीं, समस्याएं मुंह बांए खड़ी हैं। वहां जाकर क्या हो सकता है? सरकार जो चाहती है वो ही तो निर्णय कुछ लोग कर लेते हैं।

वर्ष 2001 की विभिन्न तारीखों को पुनः ग्राम सभाएं पूरे प्रदेश में आयोजित होंगी। ग्रामीण विकास की जीवित विकास गंगा बहने को आतुर होगी। 65 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक मतदाताओं ने अभी–अभी चुनावों में मतदान किया है। इन ग्राम सभाओं में दस हजार बालिका प्राथमिक विद्यालयों के परिपत्र जारी हो गए हैं। चुनावों के कुछ समय पहले गांवों में वार्ड सभाओं की व्यवस्था को भी वैधानिक स्वरूप दिया गया है। उन्तीस सरकारी विभागों की ग्रामीण इकाइयों पर नियंत्रण का अधिकार ग्राम सभाओं को दिया गया है। पूर्व की सभी ग्राम सभाओं के कामकाज को ध्यान में रखकर वर्ष 2001 की ग्राम सभाओं को अधिक जनसंवाद का स्थान बनाकर विकास की वास्तविक जीवित गंगा बनाने के लिए विशेष कार्य करना होगा।

ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों को व्यापक प्रचार–प्रसार करके वयस्क लोगों को, विशेष कर युवा वर्ग को, ग्राम सभाओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए। ग्रामों में ढोल–थाली बजवाकर प्रचार करना जरूरी है। विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के माध्यम से भी प्रचार करमा चाहिए। इन बालक–बालिकाओं को दर्शक बनाया जाए ताकि भावी जीवन में वे सहभागिता का संकल्प ले सकें। विस्तृत स्थान का निर्धारण करके वहां छाया और जल का प्रबंध होना चाहिए। भावी योजनाओं के संबंध में लोगों को जानकारी दी जाए ताकि ग्राम पंचायत को विकास सहायता राशि जनता से लेने में कठिनाई न हो और वह योजनाओं को अन्तिम रूप देकर उनको सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर सके।

इन सभी के मूल में एक ही प्रयास सर्वाधिक जरूरी है, कि गांव के मतदाताओं में से कम से कम एक तिहायी मतदाताओं को तो ग्राम सभा में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाए। महिलाओं और कमजोर वर्गों के लोगों को ज्यादा संख्या में ग्राम सभाओं से जोड़ा जाए। तभी ग्राम सभाएं वास्तव में ग्राम स्वराज की संवैधानिक व्यवस्थापिका हो सकेंगी। इन सभाओं को वास्तविक व्यवस्थापिका बनाने के प्रयास ही ग्रामों में विकास की जीवित गंगा

अब पहली मई 2001 को ग्राम सभाएं पूरे राज्य में आयोजित होंगी। इस सच्चाई के बावजूद यह स्वीकारना होगा कि आज भले ही ग्राम सभाएं शक्तिशाली प्रतीत न हों पर आने वाले समय में ये शक्तिशाली हो सकेंगी।

अवतरित कर सकते हैं।

अस्तु, ग्राम सभा की परिकल्पना प्राचीन भारत की गौरवशाली परम्पराओं से जुड़ी हुई है। 1959 में बलवंत राय मेहता समिति की अनुशंसा के अनुसार प्रत्येक ग्राम पंचायत से ग्राम सभा का उल्लेख कर दिया गया था परन्तु ग्राम सभाओं को क्रियाशीलता प्रदान करने के लिये न तो नियम ही बनाए गए और न ही ग्राम सभा की बैठकें बुलाने संबंधित कार्य प्रणाली भी नियमित गति पा सकीं। इससे ग्राम सभा नामक संस्था के संस्थानीकरण के लिये ईमानदारी से प्रयास ही नहीं हो सके। ग्राम सभा नाम की संस्था निर्जीव सी रही जिसका उत्प्रेरण केवल अंत्योदय योजना के संचालन के बाद ही किया गया। तब से ग्राम सभा का मुख्य प्रयोग आइ.आर.डी.पी के लिए गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर करने के लिए किया जाने लगा। कई गांवों के लिए एक–एक ग्राम सभा का प्रयोग सफल नहीं रहा क्योंकि आस–पास के कई गावों की स्त्रियों और पुरुषों की भागीदारी इसमें संभव नहीं रही। दूर से आना–जाना एक समस्या भरा कार्य है। इस कारण ग्राम सभा का आयोजन ग्रामीण मानसिकता में महत्वपूर्ण स्थान नहीं पा सका।

1962 में कुछ ग्रामों के प्रबुद्ध सरपंचों ने अपने यहां निर्वाचित जनप्रतिनिधियों, प्रधानों तथा जिला कलेक्टरों जैसे सरकारी अधिकारियों को बुलाकर ग्राम सभा के नाम से बैठक बुलाकर ग्राम पंचायत की वार्षिक प्रगति सुनाई गई। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि 1959 से 1998 तक राजस्थान में ग्राम सभाएं महत्वपूर्ण संस्था के रूप में उभर कर नहीं आ सकीं। वे गरीब परिवारों की सूचियों को सत्यापित करने वाली सभा जैसी रही। वहां पर केवल मौखिक विचार–विमर्श ही संभव रहते हैं। उसमें जिम्मेदार युवा नागरिकों की उपस्थिति बढ़ाने की कोई प्रक्रिया भी सुनिश्चित नहीं रहती। अतः ग्राम सभाओं के प्रति जन सामान्य की रुचि में कोई अधिक परिवर्तन आने की आशा अभी नहीं है। पहली मई 1999 में सम्पूर्ण राज्य की सभी पंचायतों में ग्राम सभाएं 16,000 नई राजीव गांधी प्राथमिक पाठशालाएं खोलने के लिए राज्यव्यापी अभियान से आयोजित की गई जिनमें विद्यालयों के लिए स्थानों और शिक्षकों का चयन किया गया और राज्य सरकार के अनुदान से विद्यालय भवन बनाए जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ।

अब पहली मई 2001 को ग्राम सभाएं पूरे राज्य में आयोजित होंगी। इस सच्चाई के बावजूद यह स्वीकारना होगा कि आज भले ही ग्राम सभाएं शक्तिशाली प्रतीत न हों पर आने वाले समय में ये शक्तिशाली हो सकेंगी। जन–जागरण और शिक्षा प्रचार से ग्रामीण जनों में ग्राम सभाओं के प्रति रुचि जागेगी। ग्राम सभाओं में उपस्थिति बढ़ेगी। और वहां पर व्यक्तिगत आग्रहता गौण होने लगेगी। सभी 29 विभागों की योजनाओं का समयबद्ध क्रियान्वयन, वित्तीय अनुशासन और कार्य की कुशलता एवं निरन्तर मूल्यांकन की प्रक्रिया विकसित होने लगेगी। इससे ग्रामीण जनों में ग्राम सभा के प्रति आस्था जागेगी। इससे ग्राम सभाओं का संस्थानुकरण होने लगेगा। वस्तुपरक और व्यावहारिक योजनाएं बनेंगी। सभी तरह की सूचनाएं सभी लोगों को प्राप्त होनी प्रारम्भ होंगी। ग्राम सभाओं को एक ही दिन आयोजित नहीं करके 15 दिनों में विभिन्न तारीखों में पूरे भारत में इनका आयोजन हो। ताकि सभी को सूचना मिले। सरकार भी प्रबोधन कर सके और जन सहभागिता बढ़े।

अच्छा तो यही रहेगा कि ग्राम सभाओं के आयोजन के पहले जन–जागरण और चेतना तथा लोगों में लोकानुरंजन विकसित किया जाए। सरकार को भी चाहिए कि ग्रामीण विद्यालयों में विधार्थियों के माध्यम से ग्रामीण जनों में ग्राम सभा के महत्व को आत्मसात कराए और उन्हें सकारात्मक रूप से सक्रिय बनाए। ❑

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निवारण के विभिन्न कार्यक्रम

डा. शिवभूषण गुप्त*

निर्धनता एक विश्वव्यापी समस्या है। 15 अगस्त 1947 को देश राजनीतिक दृष्टि से तो स्वतंत्र हो गया था लेकिन आर्थिक परतंत्रता अभी बनी हुई है और देश को घोर गरीबी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। एक अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की दैनिक क्रय शक्ति (Purchasing Power Pariety) उस देश की मुद्रा के अनुसार एक डालर से कम है तो उसे गरीब व्यक्ति माना जाता है। इस मान्यता के अनुसार भारत में 52.5 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे निर्वाह कर रही है। विश्व के केवल सात देश (ग्वातेमाला, सिनेगल, नाइजर, युगाण्डा, मेडागास्कर, जाम्बिया और गिरीबिसाऊ) ऐसे हैं जिनमें गरीबी में जीवन व्यतीत करने वालों का प्रतिशत भारत से अधिक है परन्तु इन सातों देशों की कुल मिलाकर जनसंख्या 7.4 करोड़ है जो भारत के अकेले एक प्रान्त उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या से भी कम है। विश्व में इन सातों देशों को अलग करके अवलोकन करें तो पाते हैं कि भारत ही सबसे गरीब मुल्क है।

भारत सरकार की मान्यता के अनुसार गरीब उस व्यक्ति को माना जाता है जो पर्याप्त पोषण के लिए खाद्य पदार्थ न जुटा सके। इस परिभाषा के अनुसार अभी भी देश में 34 करोड़ से अधिक लोग गरीब हैं। यह संख्या स्वतन्त्रता–प्राप्ति के समय देश की कुल आबादी के लगभग ही है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आजादी के 52 वर्षों में गरीबी घटने के बजाय बढ़ी है। एक अध्ययन के अनुसार 1993–94 में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वालों का प्रतिशत 37.27 था।

* वरिष्ठ प्रवक्ता – अर्थशास्त्र विभाग, मदनमोहन मालवीय पोस्टग्रेजुएट कालेज, कालाकांकर, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

इस व्यापक गरीबी का कारण लम्बे समय तक देश में विदेशी गुलामी को या जनसंख्या वृद्धि को बताया जाता है। ये दोनों ही तर्क निराधार हैं। देश को स्वतन्त्र हुए 52 वर्ष बीत चुके हैं जो गरीबी निवारण के लिए पर्याप्त समय था। जब देश को स्वतन्त्रता मिली थी तब दक्षिण कोरिया की प्रति व्यक्ति आय भारत के लगभग बराबर ही थी। अब उसकी प्रति व्यक्ति आय भारत की तुलना में कई गुना अधिक है। आबादी का घनत्व तो एक व्यर्थ की दलील है क्योंकि जापान, कोरिया, नीदरलैण्ड की आबादी का घनत्व भारत की तुलना में अधिक है फिर भी वे भारत से कहीं ज्यादा खुशहाल हैं। जापान तो विश्व की दूसरे नम्बर की शक्ति बन चुका है। यद्यपि भारत में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि दर को नियन्त्रित करने की आवश्यकता है, फिर भी देश में फैली हुई विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी का वही एक मात्र कारण नहीं है।

भारत में स्वाधीनता के बाद से ही गरीबी गंभीर समस्या बनी हुई है क्योंकि इसकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है अतः पंचपर्षीय योजनाओं के दौरान मुख्य रूप से यह माना गया कि सामान्य विकास प्रक्रिया के जरिये गरीबी से प्रभावकारी ढंग से निबटा जा सकता है और यह भी कि अधिक विकास के लाभ गरीब जनता तक स्वतः पहुंच जाएंगे और गरीबी दूर हो जाएगी। अतः पहली पंचवर्षीय योजना में कृषि के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान की गई जो अगली दो योजनाओं में बृहद औद्योगिक इकाइयों की स्थापना पर अर्थात उद्योगों की स्थापना स्थानांतरित हो गई। इस अवधि के दौरान भूमि सुधारों, सामुदायिक विकास और सहकारी आन्दोलन पर भी बल दिया गया किन्तु बहुत–सी गलतियां हुई किन्तु फिर भी इस अवधि के दौरान प्रयोग के तौर पर विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किए गए। चौथी पंचपर्षीय योजना (1969–74) में यह परिवर्तन आया कि विकास के बजाय गरीबी पर सीधा प्रहार करने की दिशा में ध्यान केन्द्रित किया गया और "गरीबी हटाओ" पर विशेष बल दिया गया। इस प्रकार भारत में प्रारम्भ किए गए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है :–

(1) दिहाड़ी रोजगार कार्यक्रम,
(2) स्वरोजगार कार्यक्रम,
(3) क्षेत्र विकास और भूमि विकास कार्यक्रम,
(4) सामाजिक लाभ योजनाएं।

ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम 1960–61 में 32 सामुदायिक विकास खण्डों में प्रयोग के तौर पर प्रारम्भ किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य–ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध करना था। आगे चलकर 1964–65 में इस कार्यक्रम का विस्तार किया गया और इसे 1,000 विकास खण्डों में कार्यान्वित किया गया। यह कार्यक्रम 1968–69 तक जारी रहा। इसका प्रमुख लक्ष्य तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–66) के अंत तक 25 लाख श्रमिकों को 1,000 कार्य दिवसों यानी 25 करोड़ कार्य दिवसों के लिए रोजगार उपलब्ध कराना था। लेकिन इसके अन्तर्गत केवल 13.7 करोड़ कार्य दिवसों के लिए रोजगार प्रदान किया जा सका। चौथी योजना (1969–74) के दौरान तीन वर्षों की अवधि के लिए *क्रेश योजना* लागू की गई। यह कार्यक्रम तीन वर्षों के लिए देश में 350 जिलों में चलाया गया और इसके अन्तर्गत प्रत्येक जिले में श्रम बाहुल्य कार्यों के जरिये प्रत्येक वर्ष 31.5 करोड़ कार्य दिवसों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। नवम्बर 1972 में अकुशल श्रमिकों को रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करने के लिए तीन वर्षों की अवधि के लिए 15 चुने हुए ब्लाकों में प्रयोग के तौर पर सघन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम शुरू किया गया। 1970–71 में ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम के रूप में सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों के लिए कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम को देश के 13 राज्यों में 54 क्षेत्रों में प्रयोग के तौर पर चलाया गया। चौथी योजना के अंत में इसका स्वरूप *क्षेत्र विकास* के रूप में बदल दिया गया। यह परिवर्तन समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के एक कार्यदल की सिफारिश पर किया गया। चौथी योजना के दौरान और भी कार्यक्रम जैसे– लघु कृषक विकास एजेन्सी, सीमान्त कृषक तथा खेतिहर श्रमिक एजेन्सी 85 जिलों में शुरू की गई और पांचवी पंचवर्षीय योजना में इसका विस्तार 160 जिलों में किया गया। इन दोनों कार्यक्रमों के माध्यमों से लघु तथा सीमान्त खेतिहर श्रमिकों को कृषि कार्यक्रमों में विविधता के जरिये स्व–रोजगार पर जोर दिया गया। पिछले रोजगार कार्यक्रमों की परिणति काम के बदले अनाज योजना में हुई जिसे 1977 में लागू किया गया। यह एक प्रकार का मजदूरी रोजगार कार्यक्रम था। इसका लक्ष्य उपलब्ध अनाज भण्डार का उपयोग करके रोजगार जुटाना था। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय हुआ। इस कार्यक्रम को ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के प्रमुख साधनों के रूप में मान्यता मिली। अक्तूबर 1980 में काम के बदले अनाज योजना कार्यक्रम का नाम बदल कर *राष्ट्रीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम* कर दिया गया। अप्रैल 1981 से यह कार्यक्रम छठी योजना (1980–85) का हिस्सा बन गया और केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के रूप में चलाया जाने लगा जिसके लिए केन्द्र और राज्य आधा–आधा खर्च वहन करने लगे। छठी योजना में ही *राष्ट्रीय ग्रामीण कार्यक्रम* लागू किया गया। इसे चालू करने पर सरकार को 1873 करोड़ रूपये खर्च करने पड़े जिसके बदले में 175.518 करोड़ कार्य दिवसों के लिए रोजगार के अवसर पैदा किए गए। इसी कार्यक्रम के पूरक के रूप में अगस्त 1983 में *ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी* कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया जिसके प्रमुख उद्देश्य प्रत्येक भूमिहीन परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन रोजगार उपलब्ध कराना था। इस कार्यक्रम के

जे.आर.वाई. के समवर्ती मूल्याकन से ज्ञात हुआ है कि लाभार्थियों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन जातियों और भूमिहीन श्रमिकों की भागीदारी क्रमशः 54 प्रतिशत और 38 प्रतिशत थी जिससे यह भी संकेत मिलता है कि योजनाओं का स्वरूप स्वतः लक्ष्य प्राप्त करने वाला रहा है।

कार्यान्वयन के लिए सम्पूर्ण धन केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध कराया गया तथा समस्त देश में यह कार्यक्रम लागू किया गया।

सातवीं योजना के दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम पर 7809.93 करोड़ खर्च किए गए और 349.639 करोड़ कार्य दिवसों के बराबर रोजगार उपलब्ध कराया गया। इस बारे में स्पष्ट निर्देशों के बावजूद कि निर्माण कार्यों में ग्रामीण लोगों की आवश्यकताएं स्पष्ट झलकनी चाहिए, यह देखने में आया कि इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और ग्रामीण कार्यों में चयन के निचले स्तर पर ग्रामीण लोगों की अधिक भागीदारी नहीं पाई गई जितनी वास्तव में अपेक्षा की गई थी। इसे देखते हुए वर्ष 1989–90 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम को मिलाकर जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई) के नाम से कार्यक्रम में बनाया गया। यह तय किया गया कि इस योजना का 80 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार तथा 20 प्रतिशत भाग राज्य सरकारों द्वारा उठाया जाएगा। ग्रामीण स्तर के संसाधनो को अधिकार प्रदान करने के संकल्प के अलावा जवाहर रोजगार योजना प्रारम्भ करने के पीछे एक विशेष कारण यह था कि दिहाड़ी रोजगार कार्यक्रम को देश के प्रत्येक गांव से शुरू किया जाए। 1993–94 के दौरान दिहाड़ी रोजगार कार्यक्रम में आश्वासन भी दिया गया कि और अधिक लाभकारी रोजगार कार्यक्रम के पैदा करने के जवाहर रोजगार योजना के प्रयासों के पूरक के रूप में सुनिश्चित रोजगार योजना (ई.ए.एस) देश के 1,746 विकास खण्डों में प्रारम्भ की गई। जवाहर रोजगार योजना तथा सुनिश्चित रोजगार योजना में बस अन्तर इतना है कि सुनिश्चित रोजगार योजना में 100 दिन के लिए शारीरिक श्रम के रूप में रोजगार उपलब्ध कराने का आश्वासन उन सभी ग्रामीण निर्धनों को दिया जाता है जिन्हें खेती से अवकाश के दिनों में रोजगार की आवश्यकता पड़ती है। काम की मांग करने वाले श्रमिक को ग्राम पंचायत के पास नाम दर्ज कराना पड़ता है और जब ऐसे 10–12 लोग रोजगार की मांग करते हैं तो खण्ड स्तर के अधिकारी नए निर्माण कार्यों अथवा पहले से जारी कार्यों में उन्हें रोजगार उपलब्ध कराते हैं। जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई) और सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम दिहाड़ी पर केजुअल शारीरिक श्रम के रूप में रोजगार उपलब्ध कराया जाता है और उपयोगी सामुदायिक तथा सामाजिक परिसम्पित्तियों का निर्माण किया जाता है।

1980 में देश के सभी ब्लाकों में आई.आर.डी.पी. का विस्तार किया गया। यह एक स्वरोजगार योजना थी। इसका प्रमुख लक्ष्य चुने हुए ग्रामीण निर्धन परिवारों को ऋण आधारित लाभकारी परिसम्पत्तियां प्रदान करता रहा ताकि उनकी आय में बढ़ोतरी हो और ये गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। इस योजना के तहत 5 करोड़ से अधिक लोगों को सहायता दी गई।

1993 में जे.आर.वाई को सुदृढ़ और गहन बनाया गया, विशेषकर पिछड़े जिलों में सघन जे.आर.वाई शुरू की गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना के पिछले वर्ष जे.आर.वाई से विशुद्ध परिसम्पति उन्मुखी कार्यक्रम हटा लिया गया और ई.ए.एस. का समूचे देश में प्रसार करके उसे व्यापक रूप दिया गया। अब दिहाड़ी रोजगार के दो कार्यक्रम हो गए जवाहर रोजगार योजना और सुनिश्चित रोजगार योजना जो देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में लागू किए जाते रहे हैं। हाल के वर्षों में इन योजनाओं के लिए पर्याप्त धन आवंटित किया गया। इन दोनों कार्यक्रम को मिलाकर देखें तो दुनिया में दिहाड़ी रोजगार के इनसे बड़े कार्यक्रम कहीं नहीं मिलेंगे। आवंटन पद्धति में यह सुनिश्चित किया जाता है कि देश के अधिक पिछड़े क्षेत्रों में अधिक धन पहुंचे जहां अधिसंख्य ग्रामीण निर्धन रहते हैं। इन योजनाओं का लाभ समाज के अधिकतम उपेक्षित वर्ग को पहुंचाना रहा है क्योंकि जे.आर.वाई. के समवर्ती मूल्याकन से ज्ञात हुआ है कि लाभार्थियों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जन जातियों और भूमिहीन श्रमिकों की भागीदारी क्रमशः 54 प्रतिशत और 38 प्रतिशत थी जिससे यह भी संकेत मिलता है कि योजनाओं का स्वरूप स्वतः लक्ष्य प्राप्त करने वाला रहा है। पहली अप्रैल 1999 को जवाहर रोजगार योजना को पुनर्गठित करके जवाहर ग्राम समृद्धि योजना शुरू की जो ग्राम स्तर पर ग्रामीण ढांचे के विकास को पूरी तरह समर्पित है।

वर्ष 1988–89 में प्रारम्भ की गई 10 लाख कूओं की योजना दैनिक मजदूरी की ओर ही संकेत थी। साथ ही साथ सिंचाई के स्रोतों का भी निर्माण करती है। कुएं और लघु सिंचाई परियोजनाओं के तहत भूमि विकास के कार्य भी किए जाते हैं जिससे खाद्यान्नों के उत्पादन में गुणात्मक वृद्धि होती है तथा इस योजना के अन्तर्गत लाभान्वित होने वाले कृषक समृद्ध बनते जाते हैं। इसका लाभ गरीब तथा सीमान्त कृषकों तक विशेष रूप से पहुंचाया जाता है। लाभार्थियों में अधिकांश प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों का होता है।

स्वरोजगार कार्यक्रम

प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं (1951–56, 1956, 1956–61 तथा 1961–66) के दौरान नीति निर्माताओं का विचार था कि गरीबी को सामान्य विकास कार्यक्रम के तहत दूर किया जाएगा। अतः ऐसी नीतियों पर जोर दिया गया जिनमें तीव्र वृद्धि की उम्मीद थी। चौथी योजना में ग्रामीण निर्धनता दूर करने पर विशेष जोर दिया गया और गरीबों, उपेक्षितों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए बुनियादी ढांचा तैयार करने के साथ–साथ लघु कृषक विकास एजेन्सी, सीमान्त कृषक और खेतिहर श्रमिक एजेन्सी जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए।

1951–52 में गोरवाला समिति द्वारा किए गए अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण में यह पाया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को संस्थागत वित्त के स्रोतों से केवल 7 प्रतिशत ऋण ही प्राप्त हो पाता है। अतः स्वरोजगार शुरू करने वाले ग्रामीण निर्धनों को उचित

ब्याज पर ऋण प्रदान कराना आवश्यक हो गया। इस पृष्ठभूमि में 1976 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी) देश के 20 चुने हुए जिलों में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का लक्ष्य अत्यन्त छोटे उद्यम शुरू करने वाले ग्रामीण निर्धनों को रियायती ब्याज दर पर सब्सिडी वाले ऋण उपलब्ध कराना था। 1979–80 में केन्द्र ने इसे प्रायोजित कार्यक्रम बना दिया तथा केन्द्र और राज्य 50 : 50 के आधार पर धन उपलब्ध कराने लगे। 1980 में देश के सभी ब्लाकों में आई. आर.डी.पी. का विस्तार किया गया। यह एक स्वरोजगार योजना थी। इसका प्रमुख लक्ष्य चुने हुए ग्रामीण निर्धन परिवारों को ऋण आधारित लाभकारी परिसम्पत्तियां प्रदान करना रहा ताकि उनकी आय में बढ़ोतरी हो और ये गरीबी की रेखा से ऊपर उठ सकें। इस योजना के तहत 5 करोड़ से अधिक लोगों को सहायता दी गई। ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षण (ट्राइसेम) एक अन्य कार्यक्रम है जो 1979 में प्रारम्भ किया गया जिसका लक्ष्य गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे ग्रामीण परिवारों के युवकों को तकनीकी प्रशिक्षण देना है ताकि वे स्वरोजगार शुरू कर सकें। कार्यक्रम को आकर्षक रंग देने के लिए प्रशिक्षण पाने वाले को प्रशिक्षु भत्ता भी शुरू किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास (डवाकरा) कार्यक्रम 1993–94 में केवल 355 जिलों में प्रारम्भ किया गया था किन्तु यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में चलाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत लिंग सम्बन्धी उपेक्षा की भरपाई करना था। 10 से 15 सदस्यों वाले महिलाओं के समूह को 25,000 रूपये आवर्ती कोष प्रदान किया जाता है। डवाकरा महिलाओं के लिए साक्षरता केन्द्रों की स्थापना की जाती है। केन्द्र सरकार ने फरवरी 1997 से देश के अनेक जिलों में गंगा कल्याण योजना शुरू की है जिसका उद्देश्य निर्धन, सीमान्त और छोटे किसानों को सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध कराना है। इस नई योजना में 80 प्रतिशत धन केन्द्र सरकार तथा 20 प्रतिशत धन राज्य सरकारों द्वारा दिया जाता है। 1977–98 में इस योजना के लिए 255 करोड़ रूपये आवंटित किए गए। पहली अप्रैल 1999 से ही स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना नामक नया कार्यक्रम शुरू किया जिसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, डवाकरा, ट्राईसेम आदि विलय कर दिए गए।

भूमि सुधार और क्षेत्रीय विकास

भूमि सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य भूस्वामित्व के पुराने सामन्ती सामाजिक आर्थिक ढांचे को तोड़ना, बटाईदारों और काश्तकारों को पट्टेधारी की सुरक्षा प्रदान करके तथा किराए सम्बन्धी नियम तैयार करके उनका शोषण खत्म करना तथा भूमिहीनों को सामाजिक तथा आर्थिक सम्मान प्रदान करना। क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों के लिए मरूभूमि विकास कार्यक्रम, बंजर भूमि विकास कार्यक्रम शामिल है जिनका उद्देश्य समूचे क्षेत्र का विकास करना है। ये कार्यक्रम अधिक मात्रा में जल उपलब्ध कराके पैदावार बढ़ाते हैं।

सामाजिक लाभ कार्यक्रम

इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण क्षेत्रों के निर्धन परिवारों के लिए चलाया जा रहा एक विशेष कार्यक्रम है। ये प्रारम्भ में जवाहर योजना की एक उपयोजना थी जो वर्तमान में एक स्वतन्त्र कार्यक्रम है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के परिवारों तथा मुक्त कराए गए बंधुवा मजदूरों तथा अन्य गरीबों को निःशुल्क आवास उपलब्ध कराए जाते हैं। इस योजना में प्रत्येक वर्ष 10 लाख नए मकान बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन, राष्ट्रीय प्रसूति लाभ कार्यक्रम 1995 में शुरू किए गए जिनका उद्देश्य समाज के उन उपेक्षित लोगों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है जो अपनी आयु, कमजोरी आदि की वजह से विकास प्रक्रिया में अपना योगदान नहीं कर पा रहे। गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे परिवार की इस परिस्थिति में मदद की जाती है जब उसके परिवार के प्रमुख सदस्य की मृत्यु हो जाती है। यह सहायता प्राकृतिक मृत्यु में 5,000 रुपये तथा दुर्घटना के समय 10,000 रुपये की होती है।

विकास तभी होता है जब लोगों के जीवन में सभी क्षेत्रों में सुधार हो, लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हों, उनका सामाजिक परिवर्तन हो तथा यह सुनिश्चित किया जाए कि विकास के लाभ जिन्हें पहुंचने चाहिए उन तक वास्तव में पहुंचे। गरीबी राष्ट्र के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है, इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी निवारण के लिए अगर बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाया गया और एक विस्तृत व्यूह रचना की गई तो यह उचित ही है कि विशेष दिहाड़ी रोजगार, स्वरोजगार, क्षेत्र विकास और सामाजिक सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण निर्धनता दूर करने के प्रयास जरूरी हैं। अतः ऐसे निर्धन लोगों के लिए काम के अवसर पैदा करने जरूरी हैं जो वास्तव में रोजगार की तलाश में भटक रहे हैं। गरीबी निवारण में सहकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार के कार्यक्रमों को शामिल करना चाहिए।

गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों की प्रभावकारिता इस बात पर भी निर्भर करती है कि धन का कितनी अच्छी तरह से इस्तेमाल किया जा रहा है। विभिन्न गरीबी निवारण कार्यक्रमों का विकेन्द्रित ग्रामीण विकास की समग्र कार्यनीति से एकीकृत किया जाना जरूरी होगा जो स्थानीय आवश्कताओं और संसाधनों के लिए संवेदनशील हो और इसके लिए टिकाऊ सामाजिक और आर्थिक परिसम्पत्तियों के सृजन पर अधिक बल देना होगा। इन कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की क्षमता का पूरा उपयोग करना होगा। इसे मानव संसाधन विकास के साथ जोड़ना होगा। ❑

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक,
प्रकाशन विभाग
ईस्ट ब्लाक–4 लेवल–7
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	: सात रुपये
वार्षिक शुल्क	: 70 रुपये
द्विवार्षिक	: 135 रुपये
त्रिवार्षिक	: 190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)	
पड़ोसी देशों में	: 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	: 700 रुपये (वार्षिक)

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास में पंचायतों को अधिकार

डा. दीपा भास्कर दुबे

73वें संविधान संशोधन से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया और उन्हें मजबूत बनाने का मार्ग प्रशस्त हो गया। इसी दिशा में उत्तर प्रदेश सरकार ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में जो कदम उठाए हैं और पंचायतों को जो प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार प्रदान किए हैं पढ़िए उनके बारे में जानकारी इस लेख में।

उत्तर प्रदेश में 1999–2000 को *विकेन्द्रीकरण एवं जनसहभागिता* वर्ष का नारा देकर राज्य सरकार ने स्थानीय संस्थाओं को अधिकार सम्पन्न बनाकर *ग्राम्य राज्य* की स्थापना की तरफ द्रुतगामी कदम उठाया है। पंचायतों को स्वावलम्बी, स्वायत्त और सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से प्रशासनिक और वित्तीय साधनों को उन्हें हस्तान्तरित करके गांधी जी के *ग्राम स्वराज* के सपनों को साकार करने की कल्पना को मूर्तरूप प्रदान किया है।

स्वशासन के तरफ बढ़ते हुए कदम यह इंगित करते हैं कि ग्राम पंचायतें अपनी

आवश्यकताओं और साधनों की उपलब्धता के बीच समन्वय स्थापित कर एक विकासपरक योजना प्रक्रिया की ओर अग्रसर रहेंगी। विकास की मुख्य इकाई गांव होगा। इस प्रकार अब स्थानीय लोगों द्वारा योजनाओं का निर्माण होगा। शासन का कार्य केवल उपलब्ध संसाधनों के भीतर धन आवंटित करने का होगा। शिक्षा, सिंचाई, स्वास्थ्य, कृषि–कार्य, सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा विकास का कार्य अब पंचायतों द्वारा ही सम्पादित होगा। इस प्रकार राज्य सरकार ने अब तक प्रचलित राज्य स्तरीय विकास प्रक्रिया को ग्राम स्तरीय विकास की तरफ मोड़ दिया है। इससे ग्रामीण स्तर पर, स्थानीय जन सहभागिता के माध्यम से ग्राम पंचायतें अपनी विकास योजनाएं बनाकर जिला योजना समिति को सौंपेगी जो सम्यक विचार–विमर्श के बाद उसे राज्य सरकार को प्रेषित करेगी। इस प्रकार अशोक मेहता कमेटी द्वारा प्रतिपादित सूत्र, "ग्रामीण स्तर पर समस्याओं की जानकारी और उनका निराकरण केवल ग्रामस्तरीय, संगठनों द्वारा ही संभव है न कि राज्य एवं केन्द्र के माध्यम से" की परिकल्पना को उत्तर प्रदेश सरकार ने विधिक रूप प्रदान करके क्रान्तिकारी कदम उठाया है।

पंचायतों के माध्यम से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्थानीय साधनों का उत्तम उपयोग करके, ग्रामीण विकास की तरफ कदम बढ़ाया जा सकता है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य सरकार ने त्रिस्तरीय व्यवस्था को प्रभावी करने के लिए ग्राम पंचायतों को विकास की बुनियादी इकाई के रूप में विकसित करते हुए प्रदेश के विभिन्न विभागों के विकास सम्बन्धी कार्यों को ग्राम पंचायतों के पूर्ण नियन्त्रण में संपादित करने की व्यवस्था की है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

स्थानीय निकायों को कार्य, अधिकार, स्टाफ और वित्तीय साधनों का हस्तान्तरण, स्थानीय विवादों तथा छोटे अपराधों को स्थानीय स्तर पर ही निपटाने के लिए न्याय पंचायत व्यवस्था को पुनः स्थापित करना, विकास की इकाई ग्राम पंचायत को बनाना, योजना प्रक्रिया नीचे से ऊपर की ओर हो और विकास की डगर गांव से शहर की ओर हो, विकास में जन सहभागिता के लिए व्यापक उपाय करना, लाभार्थियों के लिए योजनाओं का संचालन लाभार्थियों की सहभागिता से करना। पंचायती राज संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा प्रथम चरण में निम्न कार्यों का हस्तान्तरण, स्थानीय संगठनों को मजबूत करने के लिए प्रस्तावित हैं :

- प्राथमिक विद्यालय और जूनियर हाईस्कूल।
- राजकीय नलकूप
- हैण्ड पम्प,
- स्वास्थ्य उप केन्द्र
- पशुचिकित्सा/सेवा केन्द्र
- युवा कल्याण,
- कृषि विभाग के चयनित कार्य
- ग्राम विकास विभाग के चयनित कार्य,
- पंचायती राज विभाग के चयनित कार्य,
- खाद्य विभाग की सार्वजनिक वितरण प्रणाली।

इस प्रकार के हस्तान्तरण से राज्य सरकार ने स्थानीय संस्थाओं के विकास के साथ–साथ सत्ता का विकेन्द्रीकरण करने में अहम भूमिका निभायी है। चूकि अभी तक विकास की करीब सभी योजनाएं या तो राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के माध्यम से संपादित होती थीं जो कि राज्य या केन्द्र स्तर पर बैठे हुए योजनाकारों के मस्तिष्क की तरंगों के माध्यम से होता था। इस प्रकार हमें यह कहने में संकोच नहीं कि योजना संरचना के केन्द्र और जनसामान्य के बीच अत्यधिक दूरी होने के कारण विकास की योजनाओं और कार्यक्रमों की संरचना में स्थानीय संगठनों की सहभागिता न होने के कारण ग्राम स्तर पर आर्थिक और सामाजिक विकास की प्रक्रिया पर विराम लगा हुआ था। इस प्रकार राज्य सरकार ने योजना प्रक्रिया में पंचायतों की संपूर्ण भागीदारी तय करके, उच्च स्तरीय विकास के मिथ को तोड़ा है और "स्थानीय विकास स्थानीय जनता" के सिद्धांत द्वारा विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को मजबूत किया है। अब स्थानीय जनता को छोटे–छोटे कार्यों के लिए प्रदेश मुख्यालय पर न भटक कर, जिले के स्तर पर ही उनका निस्तारण हो सकेगा। इस संदर्भ में यह कहना अतिशयोकित न होगी कि पंचायती राज संस्थाओं को हर प्रकार से अधिकार सम्पन्न करके, शुरू में राज्य सरकारों को उन पर प्रभावी पर्यवेक्षण तन्त्र की स्थापना करके, उनके कार्यों की समीक्षा करनी होगी। जब तक वे अपने आप कार्य करने में सक्षम न हो जाए तब तक राज्य का एक पर्यवेक्षीय नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए। इस विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को उद्देश्यपरक बनाने हेतु राज्य सरकार को विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करके पंचायतों को उन्हें हस्तांतरित किए गए अधिकारों के बारे में अवगत कराना एक आवश्यक कदम होंगा।

इस विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को उद्देश्यपरक बनाने हेतु राज्य सरकार को विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करके पंचायतों को उन्हें हस्तांतरित किए गए अधिकारों के बारे में अवगत कराना एक आवश्यक कदम होगा।

वैसे तो पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना के बाद इसे सुदृढ़ एवं प्रभावशाली बनाने के लिए निरन्तर प्रयास होते रहे हैं, लेकिन इस व्यवस्था को अपने उद्देश्य प्राप्ति में अभी सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1992 में संसद द्वारा संविधान में किया गया 73वां संविधान संशोधन पंचायती राज्य संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर स्थानीय प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इसी कदम को बढ़ाते हुए राज्य सरकार ने विकेन्द्रीकरण की दिशा में अति महत्वपूर्ण निर्णय लेकर पंचायतों को प्रशासनिक और वित्तीय अधिकार प्रदान करके विकास कार्यों की योजना बनाने और अनुश्रवण में सहभागिता प्रदान करने के लिए विकास की धुरी पंचायती राज संस्थाओं को सौपकर यह सिद्ध कर दिया है कि सन् 1999–2000 में स्थानीय कार्य, स्थानीय जनता द्वारा किए जाएंगें तथा स्थानीय समस्याओं का स्थानीय स्तर पर निदान और विकास कार्यों में स्थानीय जनता की सहभागिता तथा निगरानी से पंचायती राज व्यवस्था का अपना एक अस्तित्व कायम होगा और आने वाले दिनों में शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मानव संसाधन, भूमिविकास, कृषि, पेयजल योजना, समाज कल्याण, महिला विकास, पशुपालन, बाल कल्याण इत्यादि विभागों के कार्यों को पंचायती राज के अधिकार क्षेत्र में सौंपकर, राज्य सरकार ने केवल उन्हें अधिकार सम्पन्न ही नहीं बनाया है वरन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अवधारणा का अमली जाना पहनाने का सर्वोत्कृष्ट कार्य भी किया है। ❑

ग्यारहवें वित्त आयोग से पुरस्कृत स्थानीय निकाय

डा. राधे मोहन प्रसाद*

ग्यारहवें वित्त आयोग का गठन जुलाई 1998 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा.ए.एम. खुसरों की अध्यक्षता में किया गया जिन्होंने जुलाई 2000 में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। इन्हें 2000–2005 के लिए लागू किया जाना है। आयोग की मुख्य सिफारिशों में केन्द्रीय कर राजस्व का 28 प्रतिशत भाग राज्यों के हिस्से के रूप में राज्यों को दिए जाने तथा केन्द्र से राज्यों को मिलने वाले कर तथा गैर कर राजस्व पर 37.5 प्रतिशत की सीमा लगाने की सिफारिशें शामिल हैं। राज्यों की दयनीय वित्तीय हालत के मद्देनजर 96 हजार करोड़ रुपये देने की सिफारिश की गई है। इसके अतिरिक्त चीनी, कपड़ा, तम्बाकू पर अनिवार्य बिक्री कर न लगाए जाने वाले राज्यों को डेढ़ प्रतिशत अतिरिक्त हस्तांतरण की सिफारिशें की हैं। आयोग ने राज्य के पारस्परिक हिस्से को तय करने के लिए भारांश तय किए हैं। आय 62.5 प्रतिशत, जनसंख्या 10 प्रतिशत, क्षेत्र के लिए 7.5 प्रतिशत, राजकोषीय अनुशासन 7.5 प्रतिशत तथा कर प्रयास 5 प्रतिशत। इसके आधार पर ग्यारहवें वित्त आयोग ने पिछड़े राज्यों के लिए भी अधिक आर्थिक सहायता के द्वार खोल दिए है।

ग्यारहवें वित्त आयोग ने राज्यों में आपदा राहत कोषों के मौजूदा आकार को कायम रखते हुए 2000–2005 की अवधि के लिए इस राशि को 11,007.59 करोड़ रुपये के स्तर पर ही रखा गया है जिसमें केन्द्र की हिस्सेदारी 75 प्रतिशत होगी।

आयोग ने वेतन आयोग की नियुक्ति दस वर्ष के अन्तराल पर स्वतः ही करने के स्थान पर राज्यों की सलाह से ही इसकी नियुक्ति करने, खनिजों की रायल्टियों में नियमित रूप से संशोधन करने, ऐसी पेंशन प्रणाली विकसित करने जिसका भार न पड़े और जल एवं विद्युत के शुल्कों के बारें में सिफारिशें प्रस्तुत की हैं।

भारत में विभिन्न वित्त आयोग

वित्त आयोग	गठन का वर्ष	अध्यक्ष का नाम	क्रियान्वयन वर्ष
पहला	1951	के.सी. नियोगी	1952–57
दूसरा	1956	के. सन्थानम	1957–62
तीसरा	1960	ए. के. चन्दा	1962–66
चौथा	1964	डा. पी. वी. राजामन्नार	1966–69
पाचवां	1968	महावीर त्यागी	1969–74
छठा	1972	ब्रह्मानन्द रेड्डी	1974–79
सातवां	1977	जे. एम. रोलेट	1979–84
आठवां	1983	वाई. वी. चव्हाण	1984–89
नौवां	1987	एन. के. पी. साल्वे	1989–95
दसवां	1992	के. सी. पन्त	1995–2000
ग्यारहवां	1998	ए. एम. खुशरो	2000–2005

समेकित निधि में वृद्धि के उपाय

ग्यारहवें वित्त आयोग ने पंचायती राज संस्थाओं और शहरी निकायों के कामकाज में धन की कमी को पूरा करने के लिए पहली बार कुछ ठोस तथा महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। वित्त आयोग ने स्थानीय निकायों के संसाधनों को पूरा करने के लिए राज्यों को समेकित निधि बढ़ाने के जो उपाय सुझाए हैं उनमें भूमि और खेती पर कर लगाने, राज्य करों पर अधिभार या उपकर लगाने तथा व्यवसाय, पेशा, व्यापार या रोजगार पर एक मुश्त वार्षिक कर लगाने की सिफारिशें की हैं क्योंकि राज्य अपने समेकित कोष से ही स्थानीय निकायों को संसाधन हस्तांतरण करते हैं। वित्त आयोग की सिफारिशों में स्थानीय संस्थाओं के संसाधनों को बढ़ाने के लिए राज्यस्तरीय प्रयासों के अलावा स्थानीय करों तथा दरों में सुधार की जरूरत पर जोर दिया है। आयोग ने इसी सम्बन्ध में सम्पत्ति और गृहकर प्रणाली को मजबूत बनाने, चुंगी या प्रवेश कर की जगह ऐसे कर की व्यवस्था करने जो स्थानीय स्तर पर ही वसूला जा सके तथा पेयजल और दूसरे स्थानीय सेवाओं का प्रयोग करने वालों से उसकी पूरी लागत वसूलने की सिफारिश की है।

वित्त आयोग का भूमिकर के बारे में कहना है कि अनेक राज्यों ने भूमिकर या तो पूरी तरह खत्म कर दिया है या एक निश्चित आकार तक की जोत को कर से छूट दे रखी है। आयोग की राय में स्थानीय निकायों के राजस्व आधार को बढ़ाने के लिए भूमि या खेती की आय पर किसी न किसी रूप में कुछ कर लगाए जा सकते हैं। इस संदर्भ में आयोग ने पट्टा किरायों में वृद्धि करने और इससे एकत्रित राशि को नागरिक सुविधाओं में सुधार के लिए स्थानीय निकायों को देने की सिफारिश की है। इन करों के संग्रह में इन्हें शामिल करने को कहा है। इसी तरह

* स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)

करों पर उपकर, लगाने के बारे में रिपोर्ट में कहा गया है कि बिक्री कर, राज्य उत्पाद शुल्क, मनोरंजन कर, स्टाम्प शुल्क, कृषि आयकर, मोटर वाहन कर, विद्युत शुल्क आदि पर 10 प्रतिशत उपकर या अधिभार लगाकर इससे मिलने वाली आय को सामाजिक और आर्थिक विकास की विभिन्न योजनाएं बनाकर उन्हें स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करने का सुझाव दिया है।

संविधान के अनुच्छेद 276 में प्रति करदाता प्रतिवर्ष 2,500 रुपये तक व्यवसाय, व्यापार, पेशा या रोजगार पर कर लगाने का प्रावधान है। रिपोर्ट के अनुसार स्थानीय निकायों की आय को बढ़ाने के लिए सभी राज्यों को या तो इस कर को समुचित रूप से लगाना चाहिए या इसका अधिकार स्थानीय निकायों को दे देना चाहिए क्योंकि कई राज्य कर लगाते ही नहीं या लगाते भी हैं तो बहुत कम। इसलिए आयोग ने संशोधन द्वारा 2,500 रुपये की ऊपरी सीमा बढ़ाने की जरूरत भी बताई है। विभिन्न राज्यों में यह अकेला महत्वपूर्ण कर है पर विभिन्न कारणों से इसे स्थानीय निकाय ठीक से वसूल नहीं कर पाते। इसका एक कारण है स्थानीय निकाय लोगों से ज्यादा निकटता के चलते यह कर सख्ती से वसूल नहीं करते। दूसरे, इस कर को लगाने और सुधारने की कोई मानक प्रक्रिया नहीं है। तीसरे, राज्यों ने कई ऐसी रियायतें दे रखी हैं जिनसे स्थानीय निकायों को राजस्व की हानि होती है।

आयोग की सिफारिश है कि जहां भी मकान की सम्पत्ति किराये पर दे रखी है वहां सम्पत्ति कर किरायेदार या रहने वालों से वसूला जाए क्योंकि गृहकर से आय में वृद्धि की एक बड़ी बाधा किराया नियंत्रण कानून है। चुंगी और प्रवेश कर के बारे में आयोग का कहना है कि कई राज्यों ने वस्तुओं के आवागमन की रुकावट की समस्या को देखते हुए चुंगी खत्म कर दी है और उसकी जगह प्रवेश शुल्क लगाना शुरू कर दिया। इससे मिलने वाली शुद्ध प्राप्तियों को स्थानीय निकायों

ग्यारहवें वित्त आयोग ने सिफारिश की है कि केन्द्र 2000–2001 से प्रारम्भ के पांच वर्षों में राज्यों के स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करने के लिए 2,000 करोड़ रुपये दे जिसमें से 1,600 करोड़ रुपये पंचायती राज्य संस्थाओं तथा 400 करोड़ रुपये नगरपालिकाओं के लिए होंगे।

को अंतरित किया जाता है। चुंगी को एक ऐसे कर से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जो अच्छा राजस्व देने वाला हो और स्थानीय निकायों दारा ही वसूला जा सके। स्थानीय निकायों के साधन में वृद्धि के लिए केन्द्र सरकार की सम्पत्तियों पर कर लगाने के राज्यों के सुझाव को आयोग ने नहीं माना है। राज्य सरकारों ने आयोग से इन कानूनों में संशोधन करने सिफारिश की थी। फिर भी आयोग के अनुसार सरकारी सम्पत्तियां चाहे वह केन्द्र की हों या राज्य की उस पर उपभोक्ता शुल्क लगाया जाना चाहिए।

ग्यारहवें वित्त आयोग ने सिफारिश की है कि केन्द्र 2000–2001 से प्रारम्भ के पांच वर्षों में राज्यों के स्थानीय निकायों को हस्तांतरित करने के लिए 2,000 करोड़ रुपये दे जिसमें से 1600 करोड़ रुपये पंचायती राज्य संस्थाओं तथा 400 करोड़ रुपये नगरपालिकाओं के लिए होंगे। इस राशि को राज्यों के बीच बांटने का भी उसने फार्मूला सुझाया है। इसके अनुसार 40 प्रतिशत राशि आबादी के आधार पर, 20 प्रतिशत सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सूचकों के आधार पर, 20 प्रतिशत आय में अन्तर के आधार पर तथा 10 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर दी जाएगी। इन सिफारिशों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 11वें वित्त आयोग ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करते समय स्थानीय निकायों के प्रति उदारता बरती है। वैसे इसकी सबसे महत्वपूर्ण सिफारिशों में केन्द्र से राज्यों को दिए जाने वाले कर एवं गैर का राजस्व हस्तांतरण को 37.5 प्रतिशत तक सीमित रखने, सेवाओं को व्यापक तौर पर कर के दायरे में लाने तथा इसे संविधान की समवर्ती सूची में शामिल करने, सब्सिडियों में कटौती करने, व्यवसाय कर की सीमा में संशोधन करने तथा कृषिगत आय पर कर लगाने आदि के सुझाव शामिल हैं। इस तरह ग्यारहवें वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्थानीय निकायों के संसाधनों को बढ़ाने के लिए राज्य स्तरीय प्रयासों के अतिरिक्त स्थानीय करों तथा दरों में सुधार करने की जरूरत पर जो बल दिया है वह प्रशंसनीय है। ❑

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिए। पत्रिका में रंगीन फोटो छपते हैं। इसलिए रचनाओं के साथ हो सके तो रंगीन फोटो भी भेजिए। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न होना चाहिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण विकास मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली–110001 के पते पर भेजें।

— सम्पादक

ग्रामीण विकास और मीडिया

अनिल चमड़िया

देश के प्रधानमंत्री ने अपने जन्म दिन के मौके पर ग्रामीण विकास के लिए कई घोषणाएं कीं। उन घोषणाओं के आलोक में दूरदर्शन के संवाददाता ने ग्रामीण विकास राज्य मंत्री रीता वर्मा से चिंता के स्वरों में सवाल किया कि क्या इन योजनाओं का लाभ उन लोगों तक पहुंच पाएगा जिनको ध्यान में रखकर ये योजनाएं शुरू की जा रही हैं। दूसरी तरफ समाचार बुलेटिन *आज तक* ने इन घोषणाओं के दूसरे दिन अपनी एक रिपोर्ट में बताया कि एक गांव किस तरह से उपेक्षा का शिकार बना हुआ है जबकि उस गांव के लिए कई तरह की योजनाओं को शुरू करने की घोषणा दो साल पहले की गई थी। ये चिंता और शिकायत महज उदाहरण हैं। आज ग्रामीण विकास पूरी व्यवस्था के लिए एक बड़ी और गंभीर चुनौती के रूप में सामने है। संसद का शायद ही कोई सत्र हो जिसमें इस विषय को लेकर चिंता जाहिर नहीं की जाती हो। ग्रामीण विकास से जुड़े कई अधिकारी भी इस समस्या को अपने-अपने स्तर पर रेखांकित कर चुके हैं। हाल ही में ग्रामीण विकास मंत्रालय के एक बड़े अधिकारी ने इस समस्या को लेकर एक पुस्तक लिखी है। यह बात भी कई स्तरों पर बहुत साफतौर पर सामने आई है कि विभिन्न स्तरों पर ग्रामीण विकास के लिए सरकार द्वारा राशि मुहैया कराई जाती है लेकिन उसका उपयोग ही नहीं हो पाता है। यदि एक-एक योजना का अध्ययन किया जाए तो किसी नतीजे पर पहुंचना मुश्किल है। आखिरकार सच्चाई यही उभर कर सामने आती है कि विकास किसी बड़े अवरोध का शिकार हो रहा है।

अपने देश की आत्मा गांवों में बसती है। यह देश का एक सच है। भारत की बहुसंख्यक आबादी गांवों में रहती है और देश के विकास का सपना तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि गांवों का सर्वांगीण विकास नहीं होता है। भले ही शहरों का कितना भी ज्यादा विस्तार हो जाए लेकिन जहां पर व्यवस्थागत मशीनरी अपेक्षाकृत कारगर साबित नहीं हो पा रही है तो इस समस्या की जड़ को कहीं और खोजने की दिशा में बढ़ना होगा और तदनुसार उसे दूर करने के तरीके अपनाने होंगे। इस काम में मीडिया अपनी अहम भूमिका

अदा कर सकता है।

मीडिया की दृष्टिकोण

सबसे पहले मीडिया में गांव की समस्या और विकास की चिंता की क्या स्थिति है, उस परिदृश्य को समझने की जरूरत है। मौटे तौर पर मीडिया दो धाराओं में बंटा है। कथित मुख्यधारा का मीडिया ग्रामीण विकास को लेकर दो तरह से अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करता है। एक तो वह गांवों की कई तरह की समस्याओं के प्रति सरकार का ध्यान आकृष्ट करने का दावा करता है और ग्रामीण विकास में व्याप्त भ्रष्टाचार की पोल खोलता है। दूसरे तरह का मीडिया वह है जिसका संचालन सरकार के हाथ में है या फिर गैर सरकारी संगठनों ने खड़ा किया है। ये मौटे तौर पर ग्रामीण विकास की उन कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं जो पूरे कर दिए गए हैं। यानी इनकी मुख्य जिम्मेदारी उपलब्धियों को रेखांकित करने की होती है। हाल के दौर में तो विकास की पत्रकारिता की एक धारा ही विकसित करने की कोशिश की गई। कई पत्र–पत्रिकाएं तो विकास की पत्रकारिता में योगदान करने वाले लेखकों और पत्रकारों को अच्छे पारिश्रमिक से नवाजने की घोषणाएं भी करती दिखाई पड़ जाती हैं। लेकिन क्या ऐसा नहीं लगता कि इन दोनों ही तरीकों से ग्रामीण विकास की समस्याओं की जड़ में पहुंचने में सफलता नहीं हासिल की जा सकती। ग्रामीण विकास महज प्रचारात्मक सक्रियता की वजह से धीमा नहीं पड़ा है।

मुख्यधारा का मीडिया आज शहरों में सिमट कर रह गया है। शहरी समाचारों से उनके पन्ने भरे होते हैं। हाल ही में दिल्ली में कृषि पत्रकारों की एक गोष्ठी हुई जिसमें बताया गया कि पिछले साल उत्पादित छह लाख कारों से जुड़ी जितनी खबरें प्रकाशित और प्रसारित हुईं, उसकी तुलना में हमारे गांवों के किसी भी एक उत्पाद को लेकर उतनी खबरें प्रकाशित नहीं हुईं जबकि गांवों के एक उत्पाद के ग्राहकों की संख्या और उसका बाजार मूल्य कारों से कहीं ज्यादा होता है। लेकिन कार की खबरें इतनी ज्यादा प्रकाशित और प्रसारित होने का रहस्य यह है कि कार निर्माताओं ने बड़ी तादाद में मीडिया को अपने विज्ञापन दिए। इसलिए मुख्यधारा के मीडिया का ग्रामीण विकास के संदर्भ में भ्रष्टाचार और समस्या के प्रति शिकायतों के केन्द्र में सिमट जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि इन दोनों ही विषयों का संबंध कहीं न कहीं शहरी पाठक या दर्शक वर्ग से जुड़ा है।

दूसरी तरफ सरकारी नियंत्रण वाले मुख्यधारा का मीडिया मसलन दूरदर्शन और रेडियो का भी रुझान शहरोन्मुखी हो गया

बिहार में एक सांसद ने अपने फंड का इस्तेमाल ग्रामीण विकास के लिए खर्च करने के दौरान सूचना के अधिकार की भावना का बेहतरीन इस्तेमाल किया जिसके काफी अच्छे परिणाम देखने को मिले। उन्होंने अपने फंड से किसी भी योजना को शुरू करने से पहले उस गांव अथवा इलाके में लोगों की बैठक की और उस योजना के बारे में एक–एक जानकारी दी। इसका परिणाम यह हुआ कि गांव के लोग आते–जाते उस योजना की निर्माण प्रक्रिया पर अपनी निगाहें डाल लेते। कई बार निर्माण प्रक्रिया योजना के वास्तविक प्रारूप से अलग दिखी तो गांव वालों ने उसे उसी वक्त रोक दिया।

है। "गाव आज तक" जैसे समाचार बुलेटिन के बंद हो जाने की घटना से यह अंदाज लगाया जा सकता है कि मीडिया को चलाने के लिए बाजार पर कितना आश्रित रहना पड़ता है। इसलिए उनके द्वारा गांवों के लिए समय निकालना एक औपचारिकता को पूरा करने जैसा लगता है। उस समय के लिए भी ग्रामीण विकास से जुड़े विषयों का एक बना बनाया ढर्रा है। किसान और उसके उत्पाद उसके विषय के केन्द्र में ज्यादातर होते हैं। यहां इस पर बहस करने की गुंजाइश भी नहीं है और यह अप्रासंगिक है कि किस हद तक मीडिया अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों से अलग हो गया है या फिर विवश बना दिया गया है।

लोगों को जागरूक बनाने की जरूरत

मीडिया लोकतंत्र का अभिन्न अंग है। मीडिया का काम लोगों को ज्यादा से ज्यादा चेतना संपन्न करना है। यह कहा जाता है कि भ्रष्टाचार का भांडाफोड़ कर लोगों को जागरूक ही किया जाता है। लेकिन लगता है कि मीडिया ग्रामीण विकास के संदर्भ में उस सिरे को पहले पकड़ता है जिसे बाद में पकड़ने की शायद जरूरत ही नहीं पड़े। हमारे यहां विकास का ढर्रा क्या है? सरकार और उसके विभाग अपने स्तर पर योजनाएं बनाते हैं और फिर उनके क्रियान्वयन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। लेकिन क्या किसी गांव या इलाके में किसी योजना के शुरू होने से पहले वहां की जनता को इस बात का अहसास कराने की प्रक्रिया भी पूरी की जाती है कि ये विकास योजना उनकी अपनी है और उसकी देखरेख करने और उसे पूरा करवाने की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर है? इस योजना की लागत इतनी है और इसे इस रूप में तैयार किया जाना है। किसी योजना के शुरू होने से पहले शिलान्यास आदि के कार्यक्रम जरूर होते हैं, लेकिन वे कार्यक्रम जनजागरण का काम नहीं कर पाते हैं। लोगों को यह अहसास होने के बजाय कि यह योजना उनकी अपनी है, यह अहसास ज्यादा होता है कि कोई उन्हें यह दे रहा है। मीडिया में भी किसी योजना के शुरू होने के समय उस योजना से संबधित कितनी खबरें देख पाते हैं। राजस्थान में सूचना के अधिकार को लेकर ग्रामीण इलाकों में जो आंदोलन चलाया गया, वह इस बात का प्रमाण है कि लोग अपने गांव या इलाके की योजनाओं के बारे में विस्तार से जानना चाहते हैं ताकि उन्हें पता चले कि किसी खास योजना का वास्तविक

प्रारूप क्या था और उसकी लागत के मुताबिक निर्माण कार्य हुआ है या नहीं। बिहार में एक सांसद ने अपने फंड का इस्तेमाल ग्रामीण विकास के लिए खर्च करने के दौरान सूचना के अधिकार की भावना का बेहतरीन इस्तेमाल किया जिसके काफी अच्छे परिणाम देखने को मिले। उन्होंने अपने फंड से किसी भी योजना को शुरू करने से पहले उस गांव अथवा इलाके में लोगों की बैठक की और उस योजना के बारे में एक–एक जानकारी दी। इसका परिणाम यह हुआ कि गांव के लोग आते–जाते उस योजना की निर्माण प्रक्रिया पर अपनी निगाहें डाल लेते। कई बार निर्माण प्रक्रिया योजना के वास्तविक प्रारूप से अलग दिखी तो गांव वालों ने उसे उसी वक्त रोक दिया। इस तरह उस सांसद के फंड के तहत योजना निर्माण करने वाले ठेकेदार और इंजीनियर काफी सर्तक रहते हैं।

देश में मुख्यधारा का मीडिया इस तरह से लोगों को चेतनाशील बनाने की दिशा में कोशिश कर सकता है। वह लोगों में विकास योजनाओं को अपना समझने और उसे अपनी सामूहिक जिम्मेदारी पर पूरा कराने का वातावरण पैदा कर सकता है। विकास योजनाओं में ग्रामीणों की आंदोलनात्मक स्तर पर भागीदारी की प्रेरणा दे सकता है। लेकिन यदि मीडिया का रुख ग्रामीण विकास के कुछ वैसे पहलुओं को लेकर ही रह गया हो जिनका संबंध सीधे–सीधे शहरी पाठक या दर्शक वर्ग या फिर उपभोक्ता वर्ग से है तो निश्चित रूप से मीडिया के दूसरे रूपों की पहचान भी करनी होगी। इसके लिए ग्रामीण पत्रकारिता का एक वातावरण खड़ा करना होगा। जैसे स्टेट्समेन समाचार पत्र द्वारा ग्रामीण पत्रकारिता के लिए स्थापित पुरस्कार की अपनी एक भूमिका रही है। लेकिन ये अब अपवाद जैसी घटना है। क्योंकि मुख्यधारा की मीडिया की जो स्थिति है, उसमें इस जैसे पुरस्कार से एक औपचारिकता ही पूरी की जा सकती है। अब ग्रामीण पत्रकारिता का अपना एक ढांचा विकसित करना होगा। यह ढांचा उस तरह का हो सकता है जिसके अंकुर राजस्थान में सूचना के अधिकार आंदोलन के बाद फूटने की संभावना बनी है। गांव में ब्लैक बोर्ड मीडिया का विस्तार करना इसके कई रूपों में से एक हो सकता है। इस ब्लैक बोर्ड का इस्तेमाल किसी भी योजना के शुरू होने के पहले किया जा सकता है। इस पर योजनाओं की व्यावहारिक जानकारी दी जा सकती है। उस योजना की लागत में लोगों को जानकारी उपलब्ध कराने का खर्च भी शामिल किया जाना चाहिए। यह गांव के साथ ग्रामीणों के विकास के लिए भी जरूरी है क्योंकि आखिरकार हमारा लक्ष्य ग्रामीणों का ही विकास है। इसके अलावा एक स्थायी ब्लैक बोर्ड की भी स्थापना की जा सकती है जिस पर राज्य या केन्द्र सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए शुरू की गई योजनाओं के बारे में जानकारी हो। सरकारें किसी शिकायत पर क्या कार्रवाई कर रही हैं, यह भी ग्रामीणों को उपलब्ध होना जरूरी है। इस तरह की सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए ग्रामीण जनशक्ति का भरपूर उपयोग किया जा सकता है। नुक्कड़ नाटकों की तर्ज पर नुक्कड़ पत्रकारिता के विकास की यहां प्रबल संभावना दिखाई पड़ती है। ❑

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कार

इंस्टीटयूट ऑफ सोशल साइंसेज

8, नेलसन मंडेला रोड, वसन्त कुंज

नयी दिल्ली–110 070, दूरभाष : 6137027

24 अप्रैल, 2001 को **महिला सशक्तीकरण दिवस समारोह** दिल्ली, बंगलूर, चेन्नई तथा भुवनेश्वर में मनाया जायेगा।

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कारों के लिए नामांकन आमंत्रित हैं। ये पुरस्कार महिला पंचायत प्रतिनिधियों को सार्वजनिक जीवन की समृद्धि एवं पंचायतों के विकास में उनके योगदान के लिए दिये जाते हैं।

इस संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया डॉ. बिद्युत मोहन्ती, इंस्टीटयूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली से संपर्क करें। नामांकन फार्म जमा करने की अंतिम तिथि 20 मार्च, 2001 है।

ग्रामीण विकास की गति तेज करने

हमारे देश की बहुसंख्यक जनता गांवों में रहती है। हमारी अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार अभी भी कृषि है, यद्यपि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान पिछले कुछ वर्षों के दौरान कम हुआ है फिर भी, यह काफी ही है। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप कृषि क्षेत्र पर दबाव बढ़ा है। औसत जोत निरन्तर छोटी हो रही है और आज अनेक ग्रामीण परिवार केवल कृषि के सहारे जीवन यापन नहीं कर सकते।

हरित क्रान्ति के पहले दौर के बाद कृषि उत्पादन में ठहराव आ गया है। मुद्रा–स्फीति में वृद्धि के कारण कृषि जिन्सों की उत्पादन लागत निरन्तर बढ़ रही है और उत्पादन वृद्धि के कारण किसान अपना उत्पादन लाभप्रद मूल्यों पर नहीं बेच पा रहे हैं। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, बिहार और आंध्र प्रदेश सभी जगह किसान कठिनाइयों, समस्याओं और चिन्ताओं से जूझ रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसरों के अभाव में ग्रामीण जनता का एक वर्ग महानगरों और शहरों को पलायन कर रहा है। इन कठिनाइयों के साथ किसानों को भयंकर समुद्री तुफान, प्रतिवर्ष बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। जनसंख्या विस्तार और रोजगार के नए अवसरों के अभाव में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही है। आजादी के 53 वर्ष और योजनाबद्ध विकास के लगभग पचास वर्ष बीत जाने के बावजूद हमारी जनसंख्या का बड़ा भाग अशिक्षा, कुपोषण, बीमारी और अभाव का जीवन बिता रहा है।

हमारे सामने आज भी गरीबी सबसे बड़ी समस्या है। संयुक्त राष्ट्र की एक कसौटी के अनुसार वे सभी लोग गरीब हैं जो एक डालर रोज या इससे कम में गुजर बसर करते हैं। मोटे अनुमानों के अनुसार इस समय समस्त विश्व में लगभग 100 करोड़ लोग गरीबी का जीवन बिता रहे हैं। इनमें से लगभग 50 करोड़ लोग भारत में हैं। शेष अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमरीका के देशों में हैं।

भारत में अधिकांश गरीब या दरिद्र लोग गांवों में रहते हैं। देश की गरीबी का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि देश के अधिकांश राज्य वृद्धावस्था पेंशन के रूप में मात्र 100 रुपये प्रतिमास देते हैं। यह सच है कि स्वतंत्रता के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के जरिये योजनाबद्ध विकास का जो कार्यक्रम शुरू किया गया था उससे देश की गरीबी की उग्रता में कमी आई है। स्वतंत्रता के बाद अकाल से कोई नहीं मरा, केन्द्र और राज्य सरकारों ने भंयकर सूखे की स्थिति में लोगों को भूख से नहीं मरने दिया। लोगों को पीने का पानी उपलब्ध कराने की महत्वाकांक्षी योजनाएं शुरू की गईं, गांव के वयस्क स्त्री पुरुषों को वर्ष में 100 दिनों (या कुछ अधिक) तक गांरटी युक्त रोजगार देने की योजना शुरू की गई, स्वरोजगार की अनेक योजनाएं शुरू की गई, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ कृषि क्षेत्र को लाभप्रद बनाने के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए। इन योजनाओं और कार्यक्रम से स्थिति में आंशिक सुधार हुआ है।

रेडियो

ग्रामीण विकास के अन्य प्रभावी कार्यक्रम भी शुरू किए गए। इन कार्यक्रमों पर केन्द्र और राज्य सरकारें करोड़ों रुपये खर्च कर रही हैं तथापि, इन योजनाओं के बावजूद

ग्रामीण क्षेत्र का रूपान्तरण नहीं हो पाया है।

ग्रामीण विकास की गति तेज करने में सूचना माध्यमों यानी मीडिया की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। लगता है कि मीडिया इस क्षेत्र में अपनी भूमिका जोर–शोर से नहीं निभा रहा है। मीडिया के अन्तर्गत सभी सूचना माध्यम यानी रेडियो, दूरदर्शन, समाचारपत्र और नियतकालिक पत्र–पत्रिकाएं आती हैं।

भारत जैसे गरीब और विकासशील देश में लोगों तक ज्ञान, सूचना और जानकारी पहुंचाने का रेडियो सबसे सरल, कारगर और शक्तिशाली साधन है। ट्रांजिस्टर के आविष्कार के बाद देश के दूर–दराज क्षेत्रों सहित रेडियो

में जन संचार माध्यमों की भूमिका

नवीन पंत

सर्वत्र पहुंच गया है। रेडियों कम दामों पर उपलब्ध होता है, आसानी से इधर–उधर ले जाया जा सकता है, अनपढ़ व्यक्ति भी इससे लाभ उठा सकते हैं और स्थानीय कारीगर इसकी मरम्मत कर सकते हैं। लोगों को सूचना देने और शिक्षित करने के साथ यह लोगों के मनोरंजन का भी प्रमुख साधन है।

आकाशवाणी के लगभग सभी केन्द्रों से देहाती और किसान भाइयों के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों ने ग्रामीण जनता तक नई जानकारी पहुंचाने में उपयोगी भूमिका निभाई है। तथापि अब इन्हें अधिक लोकप्रिय, फलदायक और सार्थक बनाने की आवश्यकता है। पहली बात तो यह जरूरी लगती है कि हिन्दी और प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में एक ग्रामीण चैनल शुरू किया जाए। यह चैनल मनोरंजन, शिक्षा, सूचना का ऐसा संगम हो कि इसकी आवाज हर ग्रामीण घर में प्रातः काल से देर रात तक गूंजे। हमें रेडियो द्वारा अपनी ग्रामीण मानव शक्ति को अधिक समृद्ध, ज्ञानवान और जागरूक बनाना है।

यह कार्य इतना चुनौती भरा और कठिन है कि कोई केन्द्र इसको अकेले नहीं कर सकता। अतः सरकार को इस कार्य की विस्तृत समीक्षा करने और अपनी सिफारिशें देने के लिए कृषि, ग्रामीण विकास, कुटीर उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण, संचार और मानव संसाधन विभाग के विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करनी चाहिए, जो तीन महीने के भीतर अपनी रिपोर्ट दे दे।

रेडियो शिक्षा, मनोरंजन और सूचना देने का सबसे शक्तिशाली साधन है। भारत में विकास कार्यों के सम्पादन और सामाजिक परिवर्तन के लिए इस शक्तिशाली साधन का उतना उपयोग नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिए। रेडियो जन–चेतना फैलाने और ग्रामीण विकास की गति तेज करने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस साधन का इस प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाए।

दूरदर्शन

रेडियो के बाद दूरदर्शन का नम्बर आता है। रेडियो में हम केवल सुनते हैं जबकि दूरदर्शन में हम देखते और सुनते दोनों हैं। केवल सुनने की अपेक्षा देखने और सुनने का अधिक असर होता है। रंगीन टी वी के आगमन और उपग्रह के सहारे प्राप्त कार्यक्रमों ने इस असर को और बढ़ा दिया है। उपग्रह चैनलों ने दुनिया को बहुत छोटी कर दिया है।

दूरदर्शन के सभी प्रमुख केन्द्रों से हिन्दी सहित सभी प्रभुख भारतीय भाषाओं में कृषि दर्शन और ग्रामीण कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। हमारे कुछ पाठकों को यह पढ़ कर आश्चर्य होगा कि पचास के दशक के अन्त में देश में दूरदर्शन की शुरूआत संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन द्वारा 20 हजार डालर के एक अनुदान से हुई थी। यह अनुदान देश के किसानों को खेती के बेहतर तरीके सिखाने और सामुदायिक विकास की भावना विकसित करने को दिया गया था।

तब से दूरदर्शन ने अनेक मंजिले तय कर ली हैं। तथापि, यह कहा जा सकता है कि मूल रूप से जिस प्रयोजन के लिए दूरदर्शन की स्थापना की गई थी वह पीछे छूट गया है।

दूरदर्शन के कार्यक्रमों को ग्रामीण जनता के लिए किस प्रकार उपयोगी बनाया जाए यह कार्य भी रेडियो कार्यक्रमों की समीक्षा की नियुक्त समिति को सौंपा जा सकता है। समिति से कहा जा सकता है कि वह रेडियो की तरह दूरदर्शन के कार्यक्रमों को अधिक उपयोगी और लोकप्रिय बनाने के बारे में अपनी सिफारिशें पेश करे।

समाचारपत्र

इसके बाद आती है ग्रामीण विकास में समाचारपत्रों की भूमिका। हमारे समाचारपत्रों ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी भूमिका निभाई थी। उन्होंने विदेशी शासन के विरुद्ध जनता को जाग्रत, संगठित और संघर्षरत किया। स्वतंत्रता–प्राप्ति स्वयं कोई लक्ष्य नहीं था। वह देश की जनता को अशिक्षा, गरीबी, रोग और अभाव से मुक्ति दिलाने का साधन था। अनेक कारणों से हम इस लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल रहे हैं।

दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद समाचारपत्रों के सामने पहले की तरह कोई महान उद्देश्य का लक्ष्य नहीं रहा है। समाचारपत्रों का संचालन व्यापारिक दृष्टिकोण से किया जाने लगा है। अन्य व्यवसायों की तरह समाचारपत्र भी लाभ कमाने के लिए निकाले जाने लगे हैं। लाभ कमाना कोई बुरी बात नहीं है, तथापि, समाचारपत्र केवल लाभ कमाने के लिए नहीं निकाले जा सकते। लाभ कमाने के साथ–साथ समाचारपत्रों का उद्देश्य जन हित या आम जनता का हित भी होना चाहिए।

स्वतंत्रता के बाद देश में समाचार–पत्र उद्योग का बड़ी तेजी से विकास हुआ है। प्रकाशित समाचारपत्रों की संख्या और उनकी प्रसार संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। अनेक समाचारपत्र समूह एक से अधिक स्थानों (पांच से लेकर 10 स्थानों) से अपने समाचारपत्र निकाल रहे हैं। पत्रों की छपाई, साज–सज्जा और समाचार प्रस्तुतीकरण की शैली में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए हैं। कुछ समाचारपत्रों की प्रसार संख्या पांच लाख से ऊपर हो गई है। एक दो अंग्रेजी समाचारपत्रों को छोड़ जो शीर्ष स्थान पर हैं, अंग्रेजी पत्रों की अपेक्षा भाषाई पत्रों की संख्या और उनके पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई है।

तथापि, समाचारपत्रों के चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है पहले भी पत्र शहरों और महानगरों की जनता के लिए निकलते थे और आज भी मुख्य रूप से उन्ही के लिए निकलते हैं। पत्रों में पहले भी राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय समाचार हावी रहते थे, आज भी वही हावी रहते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की घटनाओं, समाचारों, कठिनाइयों, समस्याओं और उनके समाधान की पहले भी आम तौर पर उपेक्षा की जाती थी और थोड़े बहुत अपवाद को छोड़कर अभी भी उपेक्षा की जाती है।

पहली बात तो यह जरूरी लगती है कि हिन्दी और प्रत्येक क्षेत्रीय भाषा में एक ग्रामीण चैनल शुरू किया जाए। यह चैनल मनोरंजन, शिक्षा, सूचना का ऐसा संगम हो कि इसकी आवाज हर ग्रामीण घर में प्रातः काल से देर रात तक गूंजे।

पंचायती राज्य अधिनियम पारित होने के बाद देश की ग्रामीण जनता में चार लाख जन प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया है। इनमें से एक तिहाई महिलाएं हैं। इन निर्वाचित प्रतिनिधियों को सूचना चाहिए, सभी किस्म की सूचना। लोकतंत्र का आधार जवाबदेही और पारदर्शिता है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में यह लोकतांत्रिक ढांचा सूचना के अभाव में काम नहीं कर सकता। सूचना ही शक्ति है। सूचना के अभाव में भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ा नहीं जा सकता और सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता नहीं लाई जा सकती। सूचना में जनता को उसके अधिकारों और दायित्वों से परिचित कराना शामिल है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान में भी सूचना पहली कड़ी है।

गांवों की पाठशालाओं में अध्यापक नियमित रूप से पढ़ाने नहीं जाते। स्वास्थ्य केन्द्रों पर डाक्टर अनुपस्थित रहते हैं। वहां दवाओं, उपकरणों और कर्मचारियों की कमी रहती है, किसानों को नियमित रूप से बिजली, बढ़िया बीज, उर्वरक, कीड़ा मार दवाएं और सरकारी ऋण नहीं मिलता। भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी अनुदान या ऋण देते समय अपना हिस्सा मांगते हैं। अनपढ़ किसानों से गलत कागजों पर दस्तखत करा लिए जाते हैं। ये सभी विषय समाचारपत्रों में मुख्य रूप से उठाए जाने चाहिए।

इनसे क्षेत्र में समाचारपत्र की लोकप्रियता बढेगी, जनता संगठित होगी और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगेगा। समाचारपत्र की बिक्री बढ़ने से उसे अधिक विज्ञापन मिलेंगे और उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी।

इस समय अनेक समाचारपत्र प्रति सप्ताह फैशन, फिल्मों, भोजन, नौकरियों आदि विषयों पर चार–चार पृष्ठों की अतिरिक्त सामग्री देते हैं। कोई समाचारपत्र ग्रामीण अंचल की गतिविधियों पर हर सप्ताह चार पृष्ठों की सामग्री नहीं दे रहा है। जितनी जल्दी समाचारपत्र ऐसा करना शुरू करेंगे उन्हें उतनी जल्दी इसका लाभ मिलेगा।

ग्रामीण जीवन से संबंधित विषयों पर पत्रिकाएं भी नहीं निकलतीं। अनेक पढ़े–लिखे किसान अधिक उपज देने वाले बीजों, खेती की सुधरी विधि, उर्वरकों के प्रयोग, कीड़ा मार दवाओं और अनाज को सुरक्षित रखने के उपायों के बारे में जानना चाहते हैं। कुछ किसान अपने खेतों में इमारती लकड़ी और ईंधन के लिए पेड़ लगाना चाहते हैं। वे बागवानी सूअर, मुर्गी और मछली पालन के बारे में उपयोगी जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। इस समय उन्हें इन विषयों पर जो सूचना मिल रही है वह अपूर्ण और अपर्याप्त है।

ग्रामीण क्षेत्र में पत्रकारिता के विकास की असीम संभावनाएं हैं। ग्रामीण पत्रकारिता न केवल ग्रामीण विकास की गति तेज कर सकती है बल्कि भ्रष्टाचार, भाई–भतीजाबाद और जातिवाद को समाप्त करके गांधीजी के रामराज के स्वप्न को साकार कर सकती है। ❑

अंतराल

स्वाति तिवारी

धूप लगातार तेज हो रही थी, लू ऐसी चल रही थी मानो धूल का गुबार उड़ा कर मनुष्य का मजाक उड़ाना चाहती हो। शायद वह चुनौती दे रही थी कि मगना देखती हूं – तू तेज चलता है या मैं? पर बेचारा मगना कहां तेज चल पा रहा था। चलना तो चाहता था, पंख होते तो उड़कर और अकेला होता तो भाग कर या बस के पीछे लगेज की सीढ़ियों पर लटककर कैसे भी अस्पताल पहुंच जाता। पर उंगली पकड़ा हुआ बच्चा और पीछे गठरी जैसा पेट लिए, कमर पर खिसकते मरीयल दूध मुहे बच्चे को संभालती लाजो चल रही है। बीमार, दर्द से कसकती, लाजो को साथ लकर तो उसे धीरे–धीरे चलना पड़ेगा न। वह सोचने लगता है लाजो को साथ लेकर तो वह जीवन–भर चलना चाहता है, पर इस बार जाने क्यूं उसका मन शंकित है। उसे लग रहा है लाजो उसका साथ ज्यादा दिनों तक नहीं दे पाएगी। ऐसा विचार आते ही उसका चलना कठिन हो जाता है। मगना सर को झटका देता है जैसे झटकने से बात दिमाग से निकल ही जाएगी।

छः कोस दूर डाक्टरनी शहर में रहती है। गांव के दवाखाने पर चार महीने से ताला पड़ा है। लाजो बतावे थी–'डाक्टरनी का तबादला होई गवा है। और नरस बाई छुट्टी चली गई है। सरकार कागज पे तो कित्ते ई दवाखाने सकूल खोलत है, पर ई सरकारी अस्पताल बस कागज़ पर ही चलत रही – डाक्टरनी थी तो दवाई लेन शहर ही जाना पड़ता था, अब दोईन काम शहर में करत रहे।'

"रुको... कल्लू के बापू... मैं नहीं चलत सकूं तनिक रुको....." मगना पीछे पलट कर देखता है – लाजो सड़क किनारे कमर पकड़े बैठ गई है। बच्चे को उसने एक तरफ बैठा दिया है। मगना पलट कर दौड़ता हुआ आता है। एक नजर जमीन पर पड़ी बीमार गर्भवती लाजो पर डालता है तो दूसरी जमीन पर बैठे बच्चे पर। सूखे हाथ–पैर, पीला पड़ता रंग और निकला हुआ पेट। डाक्टर साब कहते हैं जाने क्या लीवर का रोग है। आपरेशन करवाना पड़ेगा। इधर लाजो फिर पेट से है। डाक्टर कहता है इसका आपरेशन भी करवाना पड़ेगा। तीसरा बच्चा जल्दी पेट में आ गया। जान का खतरा है। क्या करे मगना। उसे क्या मालूम था बच्चों के चक्कर में उसकी फूल–सी नाजुक लाजवंती यू बीमार हो तड़प–तड़प दिन काटेगी। पर क्या करे सब भाग्य का खेल है!

वह सरपट आती कार रोकने की कोशिश करता है पर उसके भाग्य कहां। सर्र–सर्र सरसराती कई गाड़ियां दनादन चली गइ। कोई तो रुक जाओ..रे.. मेरी लाजो मर जाएगी. गाड़ी रोको–रोको, रुको साब.....साबजी गाड़ी रोक दो, मेरी औरत मर रही है कोई मदद करो... उसको डाक्टर के पास ले चलो मगना बदहवास–सा दौड़ता रहा गाड़ियां रुकवाने.. कभी लाजो के पास आता... बस हिम्मत रख थोड़ा टेम लगता है अभी करता हूं कुछ.. फिर भागता है... पर... कब तक...

"चल लाजो उठ मेरा हाथ पकड़ चलते हैं। पास ही में तो डाक्टरनी का दवाखाना।" पर दर्द से तड़पती लाजो खड़ी होने की कोशिश करके फिर जमीन पर लौटने लगती है। मगना फूट–फूट कर रोने लगता... पर इस दुनिया में गरीब की पुकार सुनता कौन है। गरीब का रोना उसका पागलपन है और बीमारी से तड़पना नाटक समझा जाता है पैसे मांगने का! अचानक एक तांगे वाला आकर रुकता है। गरीब की दया तो गरीब को ही आती है।

"क्या हुआ उसे?" तागें वाले ने पूछा।

"हुजूर, मां बनने वाली है बहुत दरद है, डाक्टर बोली दरद उठे तो ले आना...आपरेशन करना पड़ेगा। पर छः कोस की दूरी चार कौस हम ले आवें, अब नहीं चल सकत ई.।

"चल उठा तांगे में डाल, ले चलते हैं।", "हां हुजूर बस अभी डालत है" मगना लाजो को उठाने की कोशिश करता है देख हम बोले थे ना भगवान बड़ा दयालू है। तांगेवाला उसके बच्चों को उठाकर तांगे में बैठा लेता है...। मगना से लाजो की पीड़ा देखी नहीं जा रही थी। बांटने जैसा दुख होता तो मगना कब से अकेला ही सारा ले लेता, पर... प्रसव की पीड़ा तो लाजो को अकेले ही झेलनी थी।

डाक्टरनी के पते पर तांगा रुकता है तो मगना राहत की सांस लेता है "देख लाजो अस्पताल आई गवा अब चिन्ता की कोनू बात नाही है... सब ठीक हो जाएगा। भगवान बड़ा दयालू है... लाजो।" तांगे वाला पता लगाता है डाक्टरनी साहेब हैं या नहीं, पता लगा नहीं हैं पेशेन्ट देखन गई हैं। तांगे वाला उससे किराया भी नहीं लेता चला जाता है। मगना उसे दुआ देता है दरवाजे पर लम्बी लाइन लगी है बीमार औरतों और बच्चों की। आदमी भी खड़े हैं साथ में आए होंगे। सोचता है? डाक्टरनी के आते ही पहले वह लाजो को बता देगा। सबसे ज्यादा तो उसे ही तकलीफ हैं। पसीने से तर होती अपनी कमीज उतारता है वह और छाती से गंगा जमना की तरह धारबंध बहते पसीने की लकीरें देखने लगता है। नर्स आकर चिल्लाती है –"ये क्या तमाशा है कपड़े पहनो। इतनी औरतों के सामने....।"

पर मगना बिना बहस किए पसीने से तर कमीज फिर पहन लेता है। ऊपर देखता है शायद बादल का कोई टुकड़ा बदली बन बरस जाए। जून की तपती दोपहर से कुछ तो राहत हो। डाक्टर के दरवाजे पर लाइन लम्बी होती चली गई। लाजो को उसने लाइन में ही लिटा दिया था।

यहां पेशेन्ट को ही लाइन में लगना होता है लाजो में लाइन में खड़े रहने या बैठने की ताकत ही कहां थी। लाइन में थोड़ी हलचल होती है। डाक्टरनी साहब आ गई है। वह दरवाजे पर देखता है बड़ी–सी सफेद कार में बैठ कर डाक्टरनी आई थी उतरी तो मगना की तरह कुछ और लोग लपके पहले देखने की बिनती करने, पर कुछ फायदा नहीं। आंखों पर काला चश्मा लगाए परियों–सी

सुन्दर उस डाक्टरनी ने – नो–नो लाइन से आइए। लाइन से भेजना सिस्टर" कह कर क्लीनिक के केबिन में प्रवेश कर लिया था। मगना अपमानित–सा महसूस करता है पर गरीब का क्या मान, क्या अपमान? डाक्टरनी उसकी लाजो को ठीक कर दे बस। वह तो सारी उम्र डाक्टरनी की गुलामी कर लेगा।

बड़ी डाक्टरनी है। उसका नाम बहुत है। वह पास खड़े बीड़ी फूंक रहे आदमी से पूछता है। "हां भैया, डाक्टर तो होशियार सुनी है"। "अपनी नैया पार लगावे तो बात है", वह मन ही मन बुदबुदाता है।

आगे अभी चार पेशेन्ट और हैं। लाजो पर नजर पड़ती है। वह कातर दृष्टि से मगना को ही ताक रही थी। पेट और कमर कस कर पकड़े थी। बच्चे भूख से बुलबुलाने लगे थे। पास ही ठेले वाला चना मुरमुरा बेच रहा था। वह जेब टटोलता है पांच का नोट फिर हाथ में आ जाता है। वह दो रुपये के मुरमुरे लेकर लौट आता है। दोनों बच्चे पुड़ियां खोल चुगने लगते हैं। सिस्टर की आवाज से मगना की तन्द्रा भंग होती है। लाजवंती...बाई...मगना लाजो के पास जा उठाने के लिए हाथ बढ़ाता है चल उठ आ गया नम्बर, चल डाक्टरनी

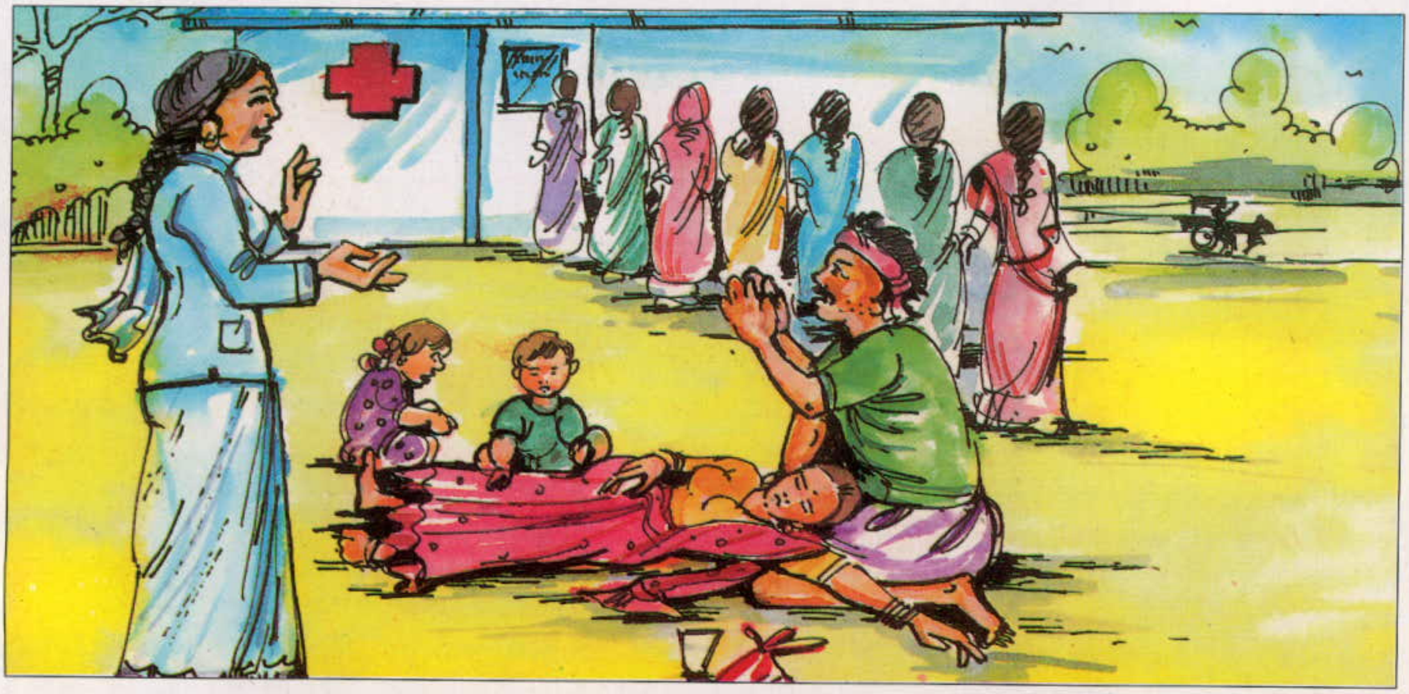

साब। वह उठाने की कोशिश करता है। सिस्टर फिर आवाज लगाती है। लाजवंती बाई पर लाजो तो लुड़क गई उसके हाथ में "डाक्टर साहब देखो जल्दी मेरी लाजो।.... डाक्टर शोर सुन बाहर आती है – "अरे ये तो मर गई तुमने पहले बताना था। यही तो गलती करते हो तुम गांव वाले, चलो अब ले जाओ इसे।"

मगना का स्वर कातर हो सिसकियों में बदल जाता है। एक खालीपन तीव्रता से भरता जाता है। अस्पताल आए थे तब दो थे। दोनों ही बच्चों को थामे थे पर अब तीन को थाम कर छः कोस मगना कैसे ले जाए। वह एक–एक कर तीनों को दवाखाने के बाहर सड़क पर लाता है। पोटली से लाजो का लुगड़ा निकाल लाजवंती की लाश की लाज बचाने उड़ा देता है।

तांगे वाला किसी राहगीर को छोड़कर फिर उधर से गुजरता है एक अन्तराल के बाद। तांगे वाले के जाने और आने के उस छोटे से अन्तराल के मध्य लाजो ने लम्बा अंतराल काटा था जीवन और मृत्यु के बीच का। यह अंतराल अवधि में कितना ही छोटा या बड़ा हो, घाव देता है, घाव को नासूर में बदल देता है। यह जीवन की अर्थहीनता पर हंसना या रोना सिखाता है। अमीर और गरीब के बीच का अंतराल गरीब की मजबूरी को परत–दर–परत उघाड़ देता है। उसे अपनी औकात का अहसास कराता है। बार–बार मगना ने डाक्टर और गरीब पेशेन्ट के मध्य पसरे अन्तराल को महसूस किया था। पहले 150 रुपये परामर्श शुल्क देने वाले बीमार देखे गए थे। पर्ची कटवाने वाले बाद में। निःशुल्क परामर्श वालों की लम्बी लाइन में लगी थी लाजो। प्रतीक्षा के उस अन्तराल को पाटा था मृत्यु ने।

फिर सामने की तरफ देखता है। चार–पांच पेशेन्ट निपट चुके थे। उसे अहसास होता है, लाजो को प्यास लगी होगी। भाग दौड़ में वह भूल ही गया। झट से पोटली खोलता है तो बच्चे टुकर–टुकर देखते हैं। पहले वह बच्चों को पानी पिलाता है फिर खुद पानी हलक में उड़ेलता है तो आंतड़ियों में ठण्डा पानी राहत देता है। गिलास भर कर लाजो को देता है, पर उसे उठाने की ताकत भी नहीं बची है उसमें वह अपनी बांह पर लाजो की गर्दन को उठाता है। दो–चार घूंट पानी लाजो गुटकती है फिर पोटली का तकिया लगा मगना उसे लेटा देता है।

दोपहर की धूप कलसाने लगती है। उसके

मगना फिर तांगे में लाजो को पटकता है। 'चलो भैया हिम्मत रखो, छोटे–छोटे बच्चे हैं, ईश्वर बड़ा दयालु है। वह इन बच्चों को सब्र देगा।" तांगेवाला उसे ढांढस देने लगता है। ❑

आवश्यकता एक और हरित क्रांति की

डा. एस.पी.एस. सिरोही

यह आश्चर्यजनक ही नहीं अपितु सत्य भी है कि आज भी विश्व में लगभग 80 करोड़ जनसंख्या को दो वक्त का भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पा रहा है, हालांकि हमने खाद्य उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है। स्थानिक गरीबी इसका प्रमुख कारण है। विश्व में करीब एक अरब जनसंख्या की वृद्धि हर दशक में हो जाती है।

भोजन जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता है। खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य यह है कि सभी मानवों को हर समय सुरक्षित, पौष्टिक एवं पर्याप्त मात्रा में भोजन उपलब्ध हो सके, ताकि वह स्वस्थ रहें और सामान्य जीवन व्यतीत करने में समर्थ हो सकें। हर वर्ष हमारी जनसंख्या में लगभग एक करोड़ 66 लाख की वृद्धि हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति भोजन की उपलब्धता में कमी हो रही है। देश में, खाद्य उत्पादन जनसंख्या की वृद्धि की दर के अनुपात में नहीं बढ़ पा रहा है। विश्व बैंक की एक नवीनतम सूचना के अनुसार हमारी 33 प्रतिशत जनसंख्या आज भी कुपोषित है। साठ के दशक में खाद्य सुरक्षा की समस्या के निवारण में हरित–क्रांति की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

हरित–क्रांति का नामकरण 1968 में डा. विलियम एस. गोड़, जो उस समय यूनाइटेड स्टेट्स ऐजेन्सी फार इंटरनेशनल डिवलपमेंट के निदेशक थे, ने किया था। खाद्य उत्पादन के मामले में महत्वपूर्ण उपलब्धि मैक्सिको से लाई गई गेहूं और चावल की छोटी प्रजातियों के सफल उत्पादन से हुई है। डा. नारमन ई. बोरलोग जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पादक प्रजनक हैं, के अथक प्रयासों के फलस्वरूप भारत में हरित–क्रांति का आगमन हुआ। उन्होंने गेहूं और चावल की अनेक बीमारी–रोधक प्रजातियां उत्पन्न कर सराहनीय कार्य किया है। इस प्रकार उस समय हमने बढ़ती हुई जनसंख्या के बावजूद खाद्य सुरक्षा में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली।

1968 में हरित–क्रांति ने भारतीय कृषि के परिदृश्य को बदल दिया था। कुल खाद्य उत्पादन जो आजादी के समय मात्र पांच करोड़ टन था, 1996–97 में 19.8 करोड़ टन तक पहुंच गया। गेहूं का उत्पादन जो 1960–61 में 1.1 करोड़ टन था, 1996–97 में बढ़कर 6.8 करोड़ टन हो गया। गेहूं के उत्पादन में इसकी उन्नतशील प्रजातियों तथा बढ़े हुए सिंचित क्षेत्रफल के कारण 1967–1972 के मध्य 9.7 प्रतिशत की असाधारण वृद्धि हुई। किसानों को उन्नतशील प्रजातियों के द्वारा फायदा पहुंचने से उन्होंने अपनी जोत

के एक बड़े हिस्से में गेहूं का उत्पादन शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप कुल खाद्यान्न उत्पादन में अकेले गेहूं का योगदान जो 1960–61 में 13 प्रतिशत था, बढ़कर 1996–97 में 35 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार चावल का उत्पादन जो 1960–61 में 35 मिलियन टन था, 1996–97 में बढ़कर 8.1 करोड़ टन हो गया। जो कुल खाद्यान्न उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत है।

बढ़ती हुई सिंचाई की सुविधाओं एवं हाइब्रिड सीड के प्रयोग से सभी प्रमुख खाद्य फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। चावल की अधिकतम उपज जो लगभग 75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है, वह सर्वप्रथम दक्षिणी कोरिया में रिकार्ड की गई। अब आयरलैंड ने इतनी उपज की प्राप्ति अर्जित कर खाद्य सुरक्षा के क्षेत्र मे अग्रणीय कार्य किया है।

चीन विश्व में सबसे अधिक अनाज तथा गेहूं उत्पादन करने वाला देश है, जिसकी औसत उपज क्रमशः 55 तथा 33 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। कुल खाद्यान्न उत्पादकता के मामले में भी वृद्धि हुई है, 1960–61 में जो 710 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, 1995–96 में बढ़कर 1499 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पहुंच गई। खाद्यान्न में सबसे ज्यादा वृद्धि चावल और गेहूं में हुई है। गेहूं की उपज जो 1960–61 में 851 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, बढ़कर 1995–96 में 2,493 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तक पहुंच गई। चावल में उपज 1960–61 में 1,030 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, 1995–96 में बढ़कर 1,855 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पहुच गई।

मोटे अनाजों की उत्पादकता जैसे ज्वार, बाजरा और मक्का में भी वृद्धि हुई है। जो पहले क्रमशः 535, 286 तथा 926 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, अब बढ़कर क्रमशः 934, 575 तथा 1,570 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई है। पिछले पचास वर्षों में खाद्यान्नों की उत्पादकता में आश्चर्यजनक रूप में वृद्धि हुई है, जो पहले 522 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी, अब बढ़कर 1,500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पहुंच गई है। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि अथक प्रयासों के बावजूद हमारी फसल उत्पादकता विश्व में सबसे कम है।

कुल खाद्यान्न उत्पादन की वार्षिक औसत दर 1990–91 से 1994–95 एवं 1994–95 से 1995–96 तक क्रमशः 1.27 एवं 1.06 प्रतिशत है। कुल खाद्यान्न उत्पादन की ये दरें राष्ट्रीय जनसंख्या की वृद्धि दर जो वर्तमान में 2.1 प्रतिशत है, से काफी कम हैं।

संसार में चावल की पैदावार का 90 प्रतिशत से ज्यादा उत्पादन और खपत एशिया में होती है। यह लगभग दो–तिहाई भारतीयों

रोम स्थित खाद्य और कृषि संगठन ने भारत को कम आय और भोजन की कमी वाले देशों के वर्ग में रखा है। भारत की आबादी एक अरब हो चुकी है। गरीबी की वजह से हमारी एक तिहाई आबादी को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता और दिन–ब– दिन ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है।

का आदर्श भोजन है। भारत में कुल 8.2 करोड़ टन चावल प्रति वर्ष उत्पन्न होता है। 1947 से 1964 तक गेहूं के उत्पादन में वृद्धि 70 लाख टन से 1.2 करोड़ टन की हुई। 1996 में हमारे किसानों ने 6 करोड़ टन गेहूं का रिकार्ड उत्पादन किया जो स्वतन्त्रता के समय मात्र 60 लाख टन था।

अनाज और खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में भारी बढोतरी के बावजूद दुनिया की आबादी का पांचवां हिस्सा आज भी कुपोषण और भूख से त्रस्त है। हरित–क्रांति का प्रभाव पहले ही क्षीण हो चुका है और प्रमुख खाद्यान्नों की उत्पादकता में गिरावट अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बनी हुई है।

पोषण संबंधी मानदंडों के आधार पर हमें करीब एक अरब की वर्तमान आबादी के लिए कम से कम 27 करोड़ टन अनाज चाहिए और इस वर्ष के अन्त तक हमारी वास्तविक खाद्य आवश्यकता 35 करोड़ टन की होगी। आठवीं पंचवर्षीय योजना में लक्ष्य 21 टन का रखा गया था, जबकि वास्तविक उत्पादन 19.5 करोड़ टन ही हो पाया था। वर्ष 2000 के लिए उत्पादन का लक्ष्य 23–24 करोड़ टन रखा गया है। इस लक्ष्य को भी हासिल करने के लिए देश को 4–4.5 करोड़ अतिरिक्त खाद्य उत्पादन करना होगा।

योजना आयोग का अनुमान है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के लिए प्रति व्यक्ति क्रमशः 2400 और 2100 कैलोरी की न्यूनतम आवश्यकता होती है। आयोग की सूचना के अनुसार वर्ष 1975–85 के मध्य में कुल खाद्यों के उपभोग में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई, जबकि उस समय खाद्यान्न उत्पादन में खासी वृद्धि हुई थी।

यूनिसेफ की एक नवीनतम सूचना के अनुसार भारत में 63 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। पचास प्रतिशत से अधिक बच्चे एनीमिया (खून की कमी) से ग्रसित हैं। इसकी पुष्टि इस तथ्य से की जा सकती है कि खाद्यान्नों में प्रति व्यक्ति उपयोग केवल 27 प्रतिशत बढ़ा है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग का अनुमान है कि देश को सन् 2000 के अन्त तक 2.47 करोड़ दलहन की पैदावार का लक्ष्य हासिल करना चाहिए ताकि लोगों की प्रोटीन की जरूरत पूरी की जा सके। दालों की कमी की वजह से प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता, जो 1956 में 70 ग्राम प्रति व्यक्ति थी, 1997 में घटकर 37.5 ग्राम प्रति व्यक्ति रह गई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है कि प्रति व्यक्ति 80 ग्राम दाल प्रतिदिन अवश्य मिलनी चाहिए।

रोम स्थित खाद्य और कृषि संगठन ने भारत को कम आय और भोजन की कमी वाले देशों के वर्ग में रखा है। भारत की आबादी एक अरब हो चुकी है। गरीबी की वजह से हमारी एक तिहाई आबादी को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता और दिन–ब–दिन ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। 1996–97 में देश में खाद्य उत्पादन बढ़कर 19.8 करोड़ टन हो गया, जो 1995–96 में 18.5 करोड़ टन था। स्पष्ट है कि वर्तमान खाद्य उत्पादन देश की निरन्तर बढ़ रही आबादी के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

बढ़ती जनसंख्या और अस्थिर कृषि पद्धतियों

की वजह से भारत को आने वाले वर्षों में अनाजों की उपलब्धता के संदर्भ में समस्या का सामना करना पड़ सकता है। अतः बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए किसान–समर्थक योजना बनाने की आवश्यकता है।

जनसंख्या विस्फोट के कारण अधिक पैदावार के लाभ व्यर्थ हो गए हैं। जनसंख्या वृद्धि से खाद्य सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है क्योंकि हर वर्ष 1.6 करोड़ या उससे भी अधिक नए चेहरे जुड़ जाते हैं। इस बढ़ती आबादी के कारण खाद्यान्न उत्पादन में निर्भर हुए भी 40 करोड़ की आबादी गरीबी की रेखा से नीचे रहने को मजबूर है। अतः जनसंख्या बढ़ोतरी में कमी लाने की तत्काल आवश्यकता है। जनसंख्या पर नियंत्रण करके भोजन की मांग में कमी लाकर उसे कारगर ढंग से पूरा किया जा सकता है।

भारत सहित कई विकासशील देश जैसे दक्षिण कोरिया, थाइलैंड आदि में कृषि श्रमिकों की संख्या काफी कम हुई है क्योंकि श्रमिक शहरों की और पलायन कर रहे हैं, जहां शहरों में सेवाओं और उद्योगों में उनकी भागीदारी बढ़ी है। आज कृषि मजदूरी भी मंहगी हो गई है, जिससे संसाधन प्रबंधन ठीक से नहीं हो पा रहा है।

उपजाऊ जमीन पर शहरीकरण के कारण भी दबाव बढ़ रहा है। वर्ष 1971 में शहरीकरण मात्र 20 प्रतिशत था जो वर्ष 2000 में बढ़कर 32 प्रतिशत तक पहुंच गया। इसके अलावा किसान अधिक लाभ को देखते हुए अनाज की बजाय गन्ना, सब्जियों, फलों, फूलों, और मवेशी उत्पादन पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। प्रति व्यक्ति भूमि और जल संसाधनों की उपलब्धता कम होती जा रही है, जिससे जैवीय और अजैवीय दबाव बढ़ रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है, भूमि की उर्वरा शक्ति कम हो रही है, जैवीय विविधता भी घट रही है, जिससे खाद्यान्न की समस्या आगामी वर्षों में और भी गंभीर हो सकती है। स्वाभाविक है कि उत्पादकता बढ़ाने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। इसके अन्तर्गत अधिक भू–भाग खेती योग्य बनाने और जल, कीटनाशक, उर्वरक, जैव–उर्वरक, श्रम आदि निवेश बढ़ाने होंगे। बेहतर कृषि वैज्ञानिक पद्धतियों और फसल की कटाई के बाद उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाकर भी इस काम में सहायता पहुंचाई जा सकती है।

जापान में, चावल उत्पादन 1967 में 1.88 करोड़ टन था, जो 1997 में गिरकर 1.2 करोड़ टन रह गया। भारत में अगले 25 वर्षों में चावल की खपत में 40 प्रतिशत बढोतरी होने का अनुमान है। इनकी उत्पादकता में वृद्धि की संभावनाएं न के बराबर हैं क्योंकि नव विकसित प्रजातियों की पैदावार अनूकूलतम परिस्थितियों में अपने चरम पर पहुंच चुकी है। सौभाग्य से मोटे अनाज और दलहन की उत्पादकता में सुधार की काफी गुंजाइश है। अतीत में उनका उत्पादन भी कुछ अधिक नहीं बढ़ा। 1997–98 के दौरान मोटे अनाजों की पैदावार में काफी गिरावट आई। यह फसलें वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों में उगाई जाती हैं और अक्सर ऐसा देखा जाता है कि वर्षा पर्याप्त नहीं होती है। कुल खेती योग्य क्षेत्र का दो तिहाई हिस्सा शुष्क खेती पद्धति के अन्तर्गत आता है।

डा. जी.एस. खुश जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पादप प्रजनक हैं और फिलीस्तीन स्थित अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान से भी संबद्ध रहे हैं, के अनुसार 1955 में सिंचित क्षेत्रों में चावल की पैदावार, जो 5 टन प्रति हेक्टेयर थी, को 2025 तक बढ़ाकर 11.6 टन करना होगा। वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी, जो चावल की खेती के कुल क्षेत्र का 40 प्रतिशत है, चावल की पैदावार का स्तर 1955 के 1.98 टन प्रति हेक्टेयर से बढ़ाकर 2025 तक 3.6 टन प्रति हेक्टेयर करना होगा।

चावल उत्पादन में बढ़ोतरी की चुनौती का सामना करने के लिए फिलिस्तीन स्थित अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान द्वारा चावल की अधिक पैदावार वाली प्रजातियों का विकास किया जा रहा है। संस्थान द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए जो नीति अपनाई जा रही है उसके अनुसार पौध को इस तरह परिष्कृत किया जाता है कि उसके बायोमास, फसल, सूचकांक और दानों की गुणवत्ता में बढोतरी हो सके। एक अन्य नीति संकर प्रजातियां विकसित करने की है, जो 20–25 प्रतिशत अधिक पैदावार देती हों। संस्थान के वैज्ञानिक चावल में स्टार्च संश्लेषण बढाने के लिए जैव प्रौधोगिकी का विकास भी कर रहे हैं और कीटों और बीमारियों से रक्षा के लिए नए जीन्स काम में ला रहे हैं।

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन ने टिकाऊ खाद्य सुरक्षा के लिए नई कृषि प्रणाली अपनाने के लिए कहा है। हाल ही में प्रकाशित अपने एक वैज्ञानिक लेख जिसका शीर्षक Keeping Green Revolution Green में उन्होंने भूख से रहित क्षेत्र बनाने का कार्यक्रम सुझाया है, जिसे एच. एफ.ए.पी (Hunger Free Area Programme) का नाम दिया गया है, इसके अन्तर्गत पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखते हुए ईको–टैक्नोलाजी के प्रसार को टिकाऊ खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण बताया है। ❑

पाठकों से

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय कृषि भवन, नई दिल्ली–110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

— सम्पादक

कृषि ऋण तथा ग्रामीण बैंक

प्रद्युमन कुमार

यह कटु सत्य है कि गांव तथा शहरों के आर्थिक विकास में बहुत अन्तर है। इसके परिणामस्वरूप लाखों व्यक्ति रोजगार की तलाश में प्रतिवर्ष शहरों को चले जाते हैं। इस दिशा में बदलाव आवश्यक है इसलिए भारत सरकार ने अनेक ऐसी ऋण प्रदान करने वाली योजनाओं की शुरूआत की है जिससे ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाया जा सके तथा गांवों का आर्थिक विकास करके गांव तथा शहरों में सन्तुलन कायम हो सके। इस दिशा में प्राथमिक सहकारी समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा अन्य व्यावसायिक बैंक किसानों, खेतिहर मजदूरों, पशुपालक, भूमि रहित मजदूर, बनियां, ग्रामीण शिल्पकारों तथा महिलाओं को स्वरोजगार प्राप्त करने के लिए सस्ती दरों पर ऋण मुहैया कराती हैं। ग्रामीण बैंकों की भूमिका गांवों के चहुंमुखी विकास के लिए 2 अक्टूबर 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम के तहत निर्धारित की गई थी। इन बैंकों से किसानों को सस्ती दरों पर आसानी से ऋण उपलब्ध कराने के लिए पूरे प्रावधान हैं जिनके द्वारा ये लोग आसानी से ऋण प्राप्त कर अपनी आय तथा जीवन स्तर में सुधार ला सकते हैं। यह ग्रामीण बैंक किसानों के निम्नलिखित कार्यों के सफल संचालन के लिए ऋण प्रदान करती हैं :

- **पशुपालन** :– गाय, भैंस, भेंड़, तथा बकरी के लिए ऋण प्रदान करती हैं।
- **कृषि कार्य** :– बैल, ट्रेक्टर, डनलप, बैल, बागवानी तथा पम्पसेट खरीदनें के लिए।
- **फसल ऋण** :– आलू तथा गन्ना के लिए।

आजकल भारत सरकार गांवों में पशुपालन के लिए अधिक जोर देती है तथा इसी पर अधिक ऋण भी दिया जा रहा है। इसका कारण यह है कि पशुपालन का काम मनुष्यों द्वारा प्राचीन काल से होता आया है जिससे मनुष्य इसको करने में पारंगत है तथा इनके उत्पाद की आज अधिक आवश्यकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है।

इसके साथ ही यह रोजगार में भी वृद्धि करता है यही कारण हैं कि सरकार पशुपालन

पर ज्यादा ऋण मुहैया करवा रही है।

ऋण प्राप्त करने की योग्यताएं :–

- कार्य करने के क्षेत्र में आवश्यक अनुभव।
- एक उचित स्थान पर कार्य का सम्पादन।
- उत्पादन के विपणन की सम्भावनाएं होनी चाहिए।
- रख–रखाव तथा चिकित्सा सुविधा की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

ऋण किसे प्राप्त करें :

ऋण प्राप्त करने के लिए आवेदन सम्बन्धित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक में सभी ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं जैसे ग्रामीण कोआपरेटिव बैंक से नोड़इयूज प्रमाण–पत्र प्राप्त कर अपनी कुल सम्पत्ति का प्रमाण–पत्र के साथ ग्राम विकास अधिकारी के माध्यम से बैंक में आवेदन करता है। तत्पश्चात कृषि वित्त अधिकारी आवेदन पत्र को स्कूटनिंग कर एक योग्य (वायऐबल) प्रतिवेदन तैयार करता है। इस रिपोर्ट में धन की आवश्यकता, प्रोजेक्ट में होने वाली आमदनी से ऋण ग्राही को लाभ तथा वसूली होगी या नहीं आदि बातें ध्यान में रखकर रिपोर्ट दी जाती है। यदि रिपोर्ट वाऐबल है तो ऋण नकद या काइन्ड में प्रदान किया जाता है तथा वस्तुओं का हाइपोथिकेशन मोर्टगेज या बीमा करवा दिया जाता है।

ऋण के प्रकार

ग्रामीण बैंक मुख्यतः तीन प्रकार का ऋण प्रदान करते हैं।

लम्बी अवधि के लिए ऋण : लम्बी अवधि के लिए ऋण की वसूली 7–9 वर्ष में की जाती है जैसे ट्रेक्टर, बागवानी तथा मकान बनवाने तथा भूमि सुधार आदि के लिए दिया गया ऋण।

मध्यम अवधि के लिए ऋण : मध्यम अवधि के लिए ऋण की वसूली 3–5 वर्ष में की जाती है जैसे पम्पसेट, पशुपालन, दुकानदार, ग्रामीण लघु उद्योगों तथा डनलप बैल आदि के लिए दिया गया ऋण।

फसल ऋण : फसल ऋण वसूली 6–18 माह में की जाती है जैसे बीज खाद फसल सुरक्षा आदि के लिए दिया गया ऋण।

पशुपालन के लिए ऋण की मात्रा, स्थान, वसूली का तरीका तथा प्रोजेक्ट की वायबिलिटी पर निर्भर करता है। यद्यपि भारतीय रिजर्व बैंक का कृषि विभाग प्राप्त किए गए ऋण से कम से कम दो भैंसें या दो गाएं दूध देने वाली, पहली भैंस/गाय दूध देना बन्द करने पर दूसरी भैंस/गाय खरीदकर दी जाती है। बीस बकरी या भेड़ों के साथ में एक नर भेड़ या बकरा खरीदा जाता है। इस आयोजन को आर्थिक यूनिट कहते हैं ताकि योजना आर्थिक रूप से लाभकारी सिद्ध हो सके।

मार्जिन मनी : मार्जिन मनी ऋण की मात्रा पर पड़ती है।

- यदि ऋण पशुपालन के लिए सीमान्त तथा लघु किसान द्वारा 18,000 रुपये से ज्यादा नहीं लिया गया है तो मार्जिन मनी की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- बड़े किसानों द्वारा लम्बी अवधि के लिए लिया गया ऋण यदि 45,000 रुपये तक है तो मार्जिन मनी नहीं ली जाती है यदि 45,000 रुपये से ऊपर है तो 15 प्रतिशत मार्जिन मनी ली जाती है।

गारंटी : यदि ऋण की मात्रा 15,000 रुपये तक है तो किसी प्रकार की गारंटी की आवश्यकता नहीं होती है। यदि ऋण एक लाख रुपये या इससे ऊपर है तो जमानत या प्रतिभूति की आवश्यकता होती है इसलिए बैंक कर्जदार के बैंक खाते तथा उसकी जमीन को बंधक बना लेती है। पशुओं को खरीदने के बाद उस क्षेत्र के पशु चिकित्साधिकारी से पशु का स्वास्थ्य प्रमाण–पत्र तथा पशु क्रय प्रमाण–पत्र बैंक को उपलब्ध कराकर पशु का बीमा करा लेना चाहिए। ❑

लघुकथा

चौथा पन्ना

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

अपनी पुत्री की शादी के लिए उचित वर खोजते हुए मैं उनके यहां पहुंचा। पहली मुलाकात में परिचय आदि हुआ और फोटो, बायोडाटा की बात बताई। अगली बार मैंने उन्हें फोटो, बायोडाटा और कुंडली दिए। चाय नाश्ते के बाद उन्होंने कहा – "भाई साहब, इसमें तो चौथा पन्ना नहीं है। चौथे पन्ने के अभाव में निर्णय लेने में विलम्ब होगा।'

लड़की पक्ष – "मैं समझा नहीं।"

लड़का पक्ष – 'इसमें समझने–समझाने की क्या बात है! चौथा पन्ना नहीं है। चौथा पन्ना 'बजट' का होता है, बिना इसके कैसे बात प्रारम्भ होगी?"

कन्या पक्ष – 'मगर वह तो सबसे बाद की चीज है, पहले आप लड़की पसंद करें, परिवार को समझें और कुंडली मिलाएं, इसके बाद बजट पर आएं।'

वर पक्ष – "देखिए मैं स्पष्ट बता रहा हूं जबकि प्रायः लोग उस पर ध्यान नहीं देते हैं और सब कुछ ठीक होने के बाद बजट पर आकर निराश हो जाते हैं। बजट बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक पन्ना है, यह आपके परिवार को समझने का एक दर्पण है, अगर यही मेरे अनुरूप नहीं होगा तो सब बातों में ठीक होकर भी बात नहीं बनेगी और आपको भी कहीं और दौड़ना पड़ेगा। सब कुछ मालूम रहेगा तो परिवार में बैठकर निर्णय लेने में सुविधा व शीघ्रता होगी।'

मैं उनकी बात को समझकर वापस चला आया और चौथे पन्ने की सार्थकता पर सहमत था। ❑

Do you want to know about:

भारत 2001

India's Foreign Policy
Information Technology
Disinvestment and Globalisation
Recent Amendments to the Constitution
and such other important topics:

india 2001

- which directly or indirectly have a bearing on your life;
- which you often encounter at the competitive examinations;
- which you generally face in job interviews.

Authentic replies to such posers are with us in our Reference Annual

भारत 2001 / INDIA 2001

Book your copy with the local agent or contact:
Sales Emporia of Publications Division: Patiala House, Tilak Marg, New Delhi, Ph: 011-3387983; Super Bazar, Connaught Circus, New Delhi, Ph: 011-3313308; Hall No.196, Old Secretariat, Delhi, Ph: 011-3968906; Rajaji Bhavan, Besant Nagar, Chennai, Ph: 044-4917673; 8, Esplanade East, Kolkata, Ph: 033-2488030; Bihar State Cooperative Building, Ashoka Raj Path, Patna, Ph: 0612-653823; Press Road, Thiruvananthapuram, Ph: 0471-330650; 27/6 Rammohan Rai Marg, Lucknow, Ph: 0522-208004; Commerce House, Currimbhoy Road, Ballard Pier, Mumbai, Ph: 022-2610081; State Archaeological Museum Building, Public Gardens, Hyderabad, Ph: 040-236393; 1st Floor, F-Wing, Kendriya Sadan, Koramangala, Bangalore, Ph: 080-5537244; PIB, C.G.O. Bhavan, A-Wing, A.B. Road, Indore; PIB, 80, Malviya Nagar, Bhopal; PIB, B-7/B, Bhawani Singh Road, Jaipur; PIB, Daulat Building, St. Inez, Panaji.

PUBLICATIONS DIVISION
MINISTRY OF INFORMATION & BROADCASTING
GOVERNMENT OF INDIA

मध्य प्रदेश में शिक्षा गारंटी योजना : एक सार्थक कदम

डा. आशा शर्मा*
श्याम सिंह गौर**

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय संविधान (1950) की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के उद्देश्य से अग्रांकित शब्दों में निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति–निर्देशक सिद्धान्त घोषित किया गया, *"राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिए जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"* बाद में नियुक्त कोठारी कमीशन (1964–66) ने भी प्राथमिक शिक्षा के उन्नयन के लिए क्रांतिकारी सुझाव दिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अन्तर्गत *राष्ट्रीय साक्षरता अभियान* और *आपरेशन ब्लैक बोर्ड* जैसे अभिनव कार्यक्रम चलाए गए लेकिन आजादी के 50 वर्ष के पश्चात् भी यह लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पाया। आज भी इसकी अभी मंजिल दूर ही दिखाई देती है।

वर्तमान समय में सरकार ने अपने राष्ट्रीय एजेण्डे में प्राथमिक शिक्षा को प्रमुख स्थान

*, ** प्रवक्ता, शिक्षा–विभाग, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, पोस्ट– नयागांव, चित्रकूट (जिला–सतना) म.प्र. 485331, भारत।

देते हुए यह संकल्प लिया है कि वह शीघ्र ही भारत के हर बच्चे को शाला शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास करेगी। अतः ग्राम पंचायतों, स्थानीय निकायों तथा सरकार के सहयोग से प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए म.प्र. शासन ने शिक्षा गारंटी योजना के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के स्वप्न को साकार करने के लिए इस दिशा में एक सक्रिय एवं सार्थक पहल की है ताकि प्रदेश के ग्रामीण, आदिवासी एवं वंचित इलाके के ऐसे सभी बच्चे जो प्राथमिक शिक्षा से आज तक वंचित एवं पूर्णतः उपेक्षित थे, शिक्षा रूपी प्रकाश से अपने जीवन को आलोकित कर सकें।

अवधारणा

प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण की बुनियादी आवश्यकता को स्वीकार करते हुए ग्रामीण, आदिवासी एवं वंचित इलाकों के सभी बच्चे शिक्षा के समान अवसर से लाभान्वित होकर अपने व्यक्तित्व का समग्र विकास कर सकें, इस सार्वभौमिक शिक्षा की संकल्पना को दृष्टिगत रखते हुए एक जनवरी 1997 को म.प्र. शासन ने इस दिशा में एक सार्थक पहल की जिसे *"मध्य प्रदेश शिक्षा गारंटी योजना"* (म.प्र. एजुकेशन गारंटी स्कीम ई.जी. एस.) का नाम दिया गया। प्रत्येक ऐसे ग्रामीण अंचलों में जहां एक किलोमीटर की दूरी पर प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है साथ ही वहां पर 6 से 11 वर्ष के कम से कम 40 बच्चे या आदिवासी क्षेत्रों के 25 बच्चे उपलब्ध हों, ऐसी स्थिति में यदि वहां का स्थानीय समुदाय शासन से प्राथमिक शिक्षा की सुविधा की मांग करता है तो शासन अपनी ओर से यह गारंटी देता है कि जहां से भी इस प्रकार की आवश्यक तथा उपयुक्त मांग प्रस्तुत की जाती है वहां उस मांग के 90 दिनों के अन्दर प्राथमिक शिक्षा के स्तर की शाला जिसे ई.जी.एस. शाला नाम की संज्ञा दी गई है, खोल दी जाएगी। समुदाय शिक्षा सुविधा की मांग के साथ-साथ ई.जी. एस. शाला में पढ़ाने की योग्यता एवं क्षमता रखने वाले स्थानीय व्यक्ति (पुरुष/महिला) का नाम भी प्रस्तावित करेगा। इस प्रकार की मांग ग्राम पंचायत के समक्ष प्रथमतः प्रस्तुत की जाती है, तत्पश्चात् ग्राम पंचायत अपनी अनुशंसा के साथ इसे जनपद पंचायत को प्रेषित करेगी। जनपद पंचायत के स्तर पर यदि यह मांग उपयुक्त पाई जाती है तो 90 दिनों के अन्दर ई.जी.एस. शाला प्रारम्भ कर दी जाएगी।

शाला के संचालन में समुदाय की भागीदारी

ई.जी.एस. ग्रामीण समुदाय की मांग पर ग्रामीण जनसमुदाय द्वारा संचालित शाला है। इसलिए प्रथमतः यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय शिक्षा सन्दर्भित अपने अधिकारों और कर्तव्यों से पूर्णतः परिचित हो।

शिक्षा गांरटी योजना के क्रियान्वयन में ग्रामीण जन समुदाय की अहम् भूमिका है। उनकी भागीदारी की सुनिश्चितता को निम्न ढंग से समझा जा सकता है :

- अपने क्षेत्र में ई.जी.एस. शाला के लिए अपनी मांग को ग्राम पंचायत के समक्ष रखना।
- उपयुक्त स्थानीय अध्यापक का प्रस्ताव रखना।
- ग्राम पंचायत को दी गई मांग के पालन हेतु ग्राम पंचायत से निरंतर संपर्क रखना।
- ई.जी.एस. शाला हेतु साफ-सुथरा एवं सुरक्षित स्थान प्रदान करना।
- शाला प्रारम्भ होने के पश्चात उसके सुचारू संचालन को सुनिश्चित करना।
- बच्चों को शाला में भेजना और अध्यापक की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- पंचायत द्वारा अध्यापक का मानेदय नियमित रूप से दिए जाने की व्यवस्था देखना।
- बच्चों एवं शाला व्यवस्था हेतु श्रेष्ठ सामग्री का पंचायत द्वारा क्रय करवाना।

पंचायतों की भूमिका

ई.जी.एस. के क्रियान्वयन की रूपरेखा से यह सुस्पष्ट है कि इसमें स्थानीय समुदाय और पंचाचत की प्रमुख भूमिका है। इसका क्रियान्वयन पूर्णतः विकेन्द्रीकृत है। इस विकेन्द्रीकरण में भी सबसे महत्वपूर्ण स्थान पंचायती संस्थाओं का है जिसमें ग्राम पंचायत की केन्द्रीय भूमिका है।

ग्राम पंचायत के अधिकार और कर्तव्य

- स्थानीय समुदाय द्वारा ई.जी.एस. का मांग पत्र स्वीकार करना एवं अपनी सिफारिश सहित जनपद पंचायत को प्रस्तुत करना।
- स्थानीय समुदाय द्वारा प्रस्तावित व्यक्ति की निर्धारित योग्यता होने पर उसकी अध्यापक के रूप में नियुक्ति। अध्यापक को मासिक मानदेय 1000 रुपये प्रतिमाह देना।
- ई.जी.एस. बजट की राशि को ई.जी.एस. खाते में जमा करना और सुनिश्चित करना कि उसका सही उपयोग हो रहा है या नहीं।
- ई.जी.एस शाला की प्राथमिक आवश्कताओं की पूर्ति करना। पढ़ाई आरम्भ होने के पूर्व ही ब्लैक बोर्ड, टाट पट्टी, चाक पेन्सिल आदि खरीद कर उपलब्ध कराना।
- ई.जी.एस. शाला का समय-समय पर अवलोकन करना। इससे यह जानने का प्रयास किया जाता है कि सभी बच्चे नियमित रूप से पढ़ने आ रहे हैं या नहीं, अध्यापक सही ढग से पढ़ा रहे है या नही, शाला के लिए उपयुक्त स्थान है अथवा नहीं, छात्रों के पास पुस्तकें हैं या नहीं। यदि उपर्युक्त में कोई कठिनाई या समस्या उत्पन्न होती है तो उसे स्थानीय समुदाय के साथ हल करना।
- जनपद मुख्य कार्यपालन अधिकारी को ई.जी.एस. शाला से सम्बन्धित मासिक प्रतिवेदन देना।

ई.जी.एस. शाला प्रारम्भ होने पर सरपंच मुख्यतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देंगे

- शिक्षा गांरटी योजना के संचालन में स्थानीय समुदाय का सहयोग सुनिश्चित करना। विशेष रूप से यह निर्धारित करना कि स्थानीय समुदाय ने जिस व्यक्ति का नाम अध्यापक के रूप में प्रस्तावित किया है, वह यदि अध्यापक बनने की योग्यता रखता है तो उसकी ही अनुशंसा अध्यापक

के रूप में जनपद पंचायत को किया जाना और जनपद पंचायत के अनुमोदन के पश्चात समुदाय द्वारा चयनित अध्यापक का आदेश निकालना।

- यह अवलोकन करना कि किसी भी परिस्थिति में समुदाय द्वारा प्रस्तावित अध्यापक का नाम पंचायत अथवा जनपद पंचायत अथवा किसी भी प्रशासनिक स्तर पर परिवर्तित नहीं हो। यदि समुदाय द्वारा उपयुक्त व्यक्ति का नाम प्रस्तावित नहीं किया जाता है तो यह सुनिश्चित करना कि ग्राम पंचायत ई.जी.एस. शाला की मांग करने वाले समुदाय को निर्देशित करे कि वह पुनः अध्यापक के लिए उपयुक्त व्यक्ति का नाम प्रस्तुत करे।
- अध्यापक एवं छात्रों की उपस्थिति सुनिश्चित करना।
- अध्यापक को समय पर मानेदय उपलब्ध कराना।
- 90 दिन के अंदर बच्चों एवं शाला हेतु नैमेक्तिक व्यय के बजट से सर्वश्रेष्ठ सामग्री का पंचायत द्वारा क्रय करवाना।

जनपद पंचायत शिक्षा समिति के अधिकार और कर्तव्य

- जनपद पंचायत की शिक्षा समिति मुख्य कार्यपालन अधिकारी (सी.ई.ओ.) द्वारा परीक्षण उपरान्त प्रस्तुत मांग पत्र का निराकरण सात दिन की अवधि में करेगी।
- ई.जी.एस. शाला के मासिक प्रतिवेदन का अवलोकन करेगी।
- अपनी पहल पर ई.जी.एस. शाला की समीक्षा करेगी।
- ई.जी.एस. शाला के सफल संचालन में सहयोग देगी।

ई.जी.एस. के संचालन में समन्वय

जिला स्तर पर ई.जी.एस. के समन्वयक और समयबद्ध क्रियान्वयन का दायित्व जिला स्तरीय ई.जी.एस. समन्वय समिति का है। गैर डी.पी.ई.पी. जिलों में मुख्य कार्यपालन अधिकारी सदस्य सचिव होंगे।

ई.जी.एस. में निम्न सदस्य हैं।

ई.जी.एस. समिति के सदस्य —
- जिलाध्यक्ष
- जिला पंचाचत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी (सी.ई.ओ.)
- उपसंचालक स्कूल शिक्षा विभाग / सहायक आयुक्त आदिवासी कल्याण विभाग
- जिला परियोजना समन्वयक (DPEP)
- प्राचार्य (DIET)

समन्वय समिति के दायित्व

- ई.जी.एस. बजट ग्राम पंचायत को समय पर भेजना।
- अध्यापक के प्रशिक्षण को समयबद्ध तरीके से 90 दिन के अंदर पूर्ण कराना।
- बच्चों की किताबों का समय पर वितरण सुनिश्चित करना।
- ई.जी.एस. के नार्मस के आधार पर संकल्पित गारंटी के विभिन्न पहलुओं की प्राप्ति की मानीटरिंग करना।
- ई.जी.एस. के क्रियान्वयन में सहयोग, समन्वय एवं समस्या समाधान।
- ई.जी.एस. के संचालन की नियमित समीक्षा।
- ई.जी.एस का मासिक प्रतिवेदन राज्य परियोजना कार्यालय को भेजना।

व्यावहारिक समस्याएं

म. प्र. में प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए शासन द्वारा संचालित 'शिक्षा गारंटी योजना' महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। इस योजना द्वारा ऐसे ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में जहां पर शालाओं का अभाव था, प्राथमिक शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से हुआ है। परन्तु इस योजना के संचालन में उत्पन्न होने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों या समस्याओं पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है तभी सार्वमौलिक प्राथमिक अपने गुणात्मक रूप को प्राप्त कर सकेगी। अतः ई.जी.एस. शाला के संचालन में उत्पन्न होने वाली व्यावहारिक, समस्याओं को जानने के लिए मझगवां ब्लाक (जिला सतना) में संचालित ई.जी.एस. शालाओं के अध्यापकों का 20 दिवसीय स्वअधिगम प्रक्रिया पर आधारित प्रशिक्षण *"जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान" सतना (म.प्र.)* द्वारा चित्रकूट में आयोजित किया गया। इस प्रशिक्षण में मझगवां ब्लाक में संचालित 164 ई.जी.एस. शालाओं के अध्यापकों ने भाग लिया। प्रशिक्षण में भाग लेने वाले अध्यापकों में से अनियत (रैण्डम) प्रतिदर्श विधि द्वारा 40 अध्यापकों को चयनित कर उन्हें एक प्रश्नावली भरने को दी ताकि 'शिक्षा गारंटी योजना' के विषय में उनके अभिमत को जाना जा सके। इसके साथ ही उनकी व्यावहारिक कठिनाइयों को जानने हेतु अध्यापकों से साक्षात्कार भी किया गया। प्राप्त अभिमत एवं साक्षात्कार के बाद जो समस्याएं प्रकाश में आईं, वह निम्नांकित हैं :–

- भवन सम्बन्धी समस्या।
- वित्त सम्बन्धी समस्या।
- अध्यापक को पाठ्य सामग्री समय पर उपलब्ध न होना।
- छात्र / छात्राओं की पूर्ण उपस्थिति का न होना।
- अध्यापक को समय पर मानदेय न मिलना।
- शाला के बच्चों को मध्यान्तरण भोजन नियमित रूप से न मिलना।
- अध्यापक के चयन में निष्पक्षता का अभाव।
- शाला में छात्र संख्या की अधिकता होने पर भी दूसरे अध्यापक की यथा समय नियुक्ति न होना।
- शाला संचालन में कागजी प्रक्रिया की अधिकता।
- व्यावहारिक प्रशिक्षण का अभाव।
- स्थानीय समुदाय में शैक्षिक जागरूकता की कमी।
- व्यापक दृष्टिकोण एवं शैक्षिक जागरूकता के अभाव में सरपंच का यथा संभव सहयोग न मिलना।

गुणात्मक उन्नयन हेतु सुझाव

जिस तरह एक पेड़ को रोपना ही नही, उसे निरन्तर पोषित करना भी जरूरी है, ठीक उसी तरह प्राथमिक शिक्षा केन्द्र खोलना ही नहीं, अपितु उसका उपयुक्त ढंग से संचालन भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अतः शालाओं के उपयुक्त ढंग से संचालन के लिए उनके गुणात्मक स्तर में अभिवृद्धि किया जाना आवश्यक है। ई.जी.एस. शालाओं के गुणात्मक उन्नयन हेतु निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत हैं :

- ई.जी.एस. शाला के संचालन हेतु उपयुक्त भवन की व्यवस्था अति आवश्यक है क्योंकि भवन के अभाव में शिक्षण अधिगम प्रक्रिया स्वाभाविक रूप में प्रभावित होती है। अतः स्थानीय समुदाय एवं ग्राम पंचायत को इस दिशा में पहल करनी अति आवश्यक है।
- ई.जी.एस. शाला की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यथा समय धन की प्राप्ति न होने पर शिक्षण गतिविधियां स्वतः बाधित होती हैं। अतः इस दिशा में स्थानीय समुदाय और सरपंच की प्रमुख रूप से नैतिक जिम्मेदारी है कि शाला के संचालन हेतु यथा समय सामग्री का क्रय कर अध्यापक का सहयोग करें ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया बाधित न हो।
- ई.जी.एस. शाला में अध्यापक का चयन स्थानीय समुदाय की मांग पर योग्यता के आधार पर होना चाहिए। अध्यापक के चयन में ग्राम पंचायत की अहम् भूमिका है। अतः इस चयन प्रक्रिया में सरपंच महोदय में निष्पक्षतापूर्ण व्यापक सोच, मूल्यपरक दृष्टि तथा शैक्षिक जागरूकता होनी अति आवश्यक है।
- शिक्षण अधिगम सामग्री यथा समय अध्यापक को उपलब्ध होना आवश्यक है ताकि बालकों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न न हो।
- ई.जी.एस. शाला बालक/बालिकाओं की पूर्ण उपस्थिति हो तथा समस्त बच्चे शिक्षा के लाभ को प्राप्त कर सकें, इसके लिए स्थानीय समुदाय तथा बच्चों के अभिभावकों की भागीदारी महत्वपूर्ण है। बच्चों को नियमित रूप से शाला भेजने के लिए प्रेरित करने में अभिभावकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः अध्यापक को बच्चों के अभिभावकों से व्यक्तिगत सम्पर्क कर उनमें शिक्षा के प्रति अभिरुचि और जागरूकता पैदा करनी चाहिए ताकि वह शिक्षा के महत्व को समझ सकें।
- बच्चे नियमित रूप से शाला आने के लिए प्रेरित हों तथा बीच में शाला से घर की ओर न भागें, इसके लिए शासन द्वारा निर्धारित मध्यान्ह भोजन उनको नियमित रूप से मिलना अनिवार्य है। स्थानीय समुदाय तथा ग्राम पंचायत की इस दिशा में सक्रिय सहयोग एवं नैतिक भागीदारी होनी अनिवार्य है।
- ई.जी.एस. शाला में नियुक्त अध्यापक को मिलने वाला मानदेय यथा समय मिलना अनिवार्य है। इसके साथ ही उनके कार्य के मूल्यांकन के आधार पर समय-समय पर उनके मानदेय में वृद्धि किया जाना आवश्यक है तथा अच्छे कार्य के निष्पादन के लिए उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहन हेतु पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए। इसमें स्थानीय जन समुदाय में उनके प्रति सम्मान बढ़ेगा तथा वह अपने कार्य को रुचि और उत्साह के साथ करने के लिए स्वतः प्रेरित होंगे।
- जिन ई.जी.एस शालाओं में निर्धारित छात्र संख्या से ज्यादा बच्चे हैं वहां पर दो अध्यापकों की नियुक्ति होना अनिवार्य है। इसके साथ ही एक दूसरे अध्यापक के रूप में योग्य महिला की नियुक्ति भी अनिवार्य है।
- अध्यापक को समय-समय पर दिया जाने वाला प्रशिक्षण सैद्धान्तिक की अपेक्षा व्यावहारिक रूप में *"बाल केन्द्रित शिक्षा"* परक होना चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम में व्यवहार के तीनों पक्षों संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों को समाविष्ट किया जाना अनिवार्य है।
- स्थानीय समुदाय तथा सरपंच महोदय का संचालित शाला एवं अध्यापक के प्रति सकारात्मक और व्यापक दृष्टिकोण, सहयोग पूर्ण व्यवहार, शिक्षा के प्रति रुचि तथा सजगता होना आवश्यक है क्योंकि सहयोग के अभाव में अध्यापकों को शाला संचालन में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
- माह में एक बार सरपंच महोदय की अध्यक्षता में अभिभावक, समुदाय एवं अध्यापक को शाला के बच्चों के साथ एक गोष्ठी का आयोजन करना चाहिए जिससे बच्चों की वास्तविक प्रगति से अभिभावक एवं स्थानीय समुदाय अवगत हो सके तथा शाला संचालन सम्बन्धी व्यावहारिक समस्याओं का निराकरण कर उसकी गुणात्मक को बढ़ाया जा सके।
- ई.जी.एस. शाला विशेषतः आदिवासी तथा वंचित वर्गों के बच्चों को सुविधा प्रदान करने का काम कर रही है। इसलिए यह न्यायोचित होगा कि ग्राम पंचायत के अधिकार क्षेत्र में ग्रामीण विकास के संसाधनों का उपयोग प्राथमिकता से ऐसे आदिवासी एवं वंचित वर्गों की शिक्षा के लिए किया जाए जिससे कि उन्हें विकास का स्थायी लाभ मिल सके।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचनात्मक बिन्दुओं के आधार पर अन्ततः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि मध्य प्रदेश में प्राथमिकता शिक्षा के लोकव्यापीकरण की संकल्पना को पूर्णता प्रदान करने के लिए शासन ने *शिक्षा गारंटी योजना* के माध्यम से ग्रामीण, आदिवासी एवं ऐसे वंचित इलाकों के बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था कर ज्ञान ज्योति को प्रज्ज्वलित करने का बीड़ा उठाया है जो आज तक इसके प्रकाश से पूर्णतः वंचित थे। यह शिक्षा रूपी प्रकाश प्रदेश के समग्र बच्चों तक पहुंच सके, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु *शिक्षा गारंटी योजना* के माध्यम द्वारा पंचायती राज संस्थाओं और समुदाय की सहभागिता से एक समयबद्ध योजना के अन्तर्गत प्रत्येक प्राथमिक शिक्षा सुविधा विहीन इलाकों में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए म.प्र. शासन द्वारा किया जाने वाला यह सक्रिय प्रयास प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण की दिशा में एक सार्थक कदम है। ❑

पर्यावरण तथा आर्थिक विकास में तालमेल की समस्या

डा. अधिकेश राय

हम विकास के इस दौर में पर्यावरण क्रांति से गुजर रहे हैं। प्राचीन में इस विचार को अधिक बल मिला कि विकास का अर्थ किसी प्रकार के दोहन से है। और तब खनिज सम्पदा का दोहन किया गया, वनों का दोहन किया गया। तब विकास के इस क्रम में हम विनाश से बेखबर थे। किन्तु आर्थिक विकास के कारण वर्तमान युग में पर्यावरण पर निरन्तर दबाव बढ़ता जा रहा है। व्यक्ति प्रकृति से दूर होने लगा है जबकि आर्थिक विकास तथा पर्यावरण में चोली दामन का संबंध है। वर्तमान परिस्थितियों में आर्थिक विकास और पर्यावरण एक सिक्के के दो पहलू हो गए हैं। अब हमारे समक्ष प्रश्न हैं कि हम किसे चुनें? आर्थिक विकास को या पर्यावरण को जबकि पर्यावरण की सुरक्षा के बिना हमारा आर्थिक विकास अधूरा है। 20वीं सदी में सभ्य कहे जाने वाले मानव ने प्रकृति से अनजाने में छेड़खानी की जिससे प्रकृति का संतुलन डगमगाने लगा। प्रकृति तथा मानव के इस युद्ध में प्रकृति की पवित्रता, सादगी, मौलिकता नष्ट होती जा रही है किन्तु स्वार्थवश मानव ने अपने हित के लिए प्रकृति का शोषण आरंभ करते हुए अपने जीवन को सुन्दर और वैभवपूर्ण बना लिया है। यह वैभव स्थायी तो नहीं है अपितु मानव के साथ–साथ समस्त जीव मंडल के अस्तित्व के लिए खतरा चुनौती के रूप में हो गया है।

विदोहन हो, शोषण नहीं

आर्थिक विकास के दो प्रमुख लक्ष्य होते हैं, प्रथम देश के समस्त उत्पादन में निरंतर वृद्धि करना और द्वितीय, बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय से निर्धन वर्ग को अधिक आय प्रदान करना जिससे कि इस वर्ग का जीवन स्तर सुधारा जा सके। निजीकरण एवं उदारीकरण की नीति से विकास के प्रथम लक्ष्य की पूर्ति यदि कुछ सीमा तक हो भी जाती है तो भी आय का वितरण निर्धन वर्ग के पक्ष में होने की संभावना बहुत कम रहती है। देशी एवं विदेशी विनियोजकों द्वारा देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों जैसे भूमि, जल, वन, आदि का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है जबकि इन प्राकृतिक साधनों के उपयोग का लाभ पूंजीपतियों एवं शहरी निवासियों को मिलता है। भूमि, जल एवं वनों के निरंकुश उपयोग से ही पर्यावरण में प्रदूषण उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार विकास के गतिमान होने से निर्धन वर्ग को एक ओर निशुल्क प्राकृतिक सम्पदाओं से वंचित होना पड़ता है और दूसरी ओर उनकी आय एवं रोजगार में भी वृद्धि नहीं हो सकी है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के निर्वाह के लिए प्राकृतिक साधनों का विदोहन अत्यावश्यक है। परन्तु इन साधनों के विदोहन के लिए अभी तक ऐसी तकनीक अपनाई गई जिनसे पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि हुई है। इस प्रकार अब यह विचार करना पड़ रहा है कि विकास एवं पर्यावरण प्रदूषण में से किसको चुनना अधिक लाभकारी है। बढ़ती जनसंख्या के निर्वाह के लिए विकास की गति और तीव्र करना आवश्यक है परन्तु विकास के लिए ऐसी तकनीकी का ही उपयोग किया जाए जो पर्यावरण के प्रदूषण को भी रोक सके। ऐसी तकनीकी की पूंजीगत लागत अत्यधिक होगी और पूंजीपति इस महंगी तकनीकी का उपयोग सरकार के नियंत्रण एवं अनुदान के आधार पर ही कर सकता है। ऐसे उदाहरण उपलब्ध हैं जिनमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने ऐसी वस्तुओं का उत्पादन, जिनसे प्रदूषण अधिक होता है, विकासशील देशों में हस्तांतरित कर दिया है। विकास सहायता एवं विनियोजन की आड़ में इस प्रकार की गतिविधियां भारत में भी चल रही हैं। सरकार को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कोई भी तकनीकी औद्योगिक इकाई सामग्री आदि को देश से लाने के पूर्व पर्यावरण पर पड़ने वाले उसके प्रभावों की गहन जांच करना अनिवार्य है।

बढ़ती जनसंख्या के निर्वाह के लिए विकास की गति और तीव्र करना आवश्यक है परन्तु विकास के लिए ऐसी तकनीकी का ही उपयोग किया जाए जो पर्यावरण के प्रदूषण को भी रोक सके।

मनुष्य की जब रोटी की आवश्यकता पूरी हो जाती है तब वह अपने को सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने के लिए कपड़े की मांग करने लगता है और इसके बाद शुरू होती है उसकी सम्पन्नता के लिए अंधी दौड़ जो बहादुरशाह जफर के शब्दों में, दो गज जमीन से शुरू होकर सीमेंट कंक्रीट के जंगलों तक

जाकर भी खत्म नहीं होती। वास्तव में रोटी कपड़ा और मकान जैसे शब्द एक समय प्रतीक थे मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताओं के–आज ये शब्द प्रतीक हैं, उस पागलपन के जिसने समूचे विश्व को घेर रखा है। हमने मानवीय विकास के नाम पर केवल एक शब्द ही गढ़ रखा है आर्थिक विकास। यह आधुनिक युग में हमारे भौतिकतावादी दर्शन की चरमसीमा है। आश्चर्य तो तब होता है जब भारत जैसे देश में जिसका सांस्कृतिक इतिहास विश्व के प्राचीन इतिहासों में से एक है, भौतिक उपलब्धियों की यह लहर हमारे उच्च सांस्कृतिक आदर्शों को ले डूबती है लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्य तब होता है जब हम अपने आपको इन निर्दयी लहरों के हवाले कर देते हैं इस बात की परवाह किए बगैर कि ये लहरें जिस किनारे अंततः फेंकेगी वह किनारा एक रेगिस्तान का होगा, किसी हरियाली का नहीं। वहां दूर–दूर तक जहां तक हमारी निगाह जाएगी, रेत के टीलें होंगे और सुबह शाम, रात रेत के अंधड़ चलते रहेंगे और हमारी आंखें हरियाली को देखने के लिए तरस जाएंगी। यह चित्र आने वाली 25वीं शताब्दी का नहीं है आने वाले मात्र 50 वर्षों का है। अंधाधुंध आर्थिक विकास पहले मनुष्य को मनुष्य के प्रति निष्ठुर बनाता है, बाद में मनुष्य को दूसरे जीवों के प्रति, उसके आसपास के परिवेश के प्रति, पेड़–पौधों और वनस्पतियों के प्रति, जिसे हम आज की भाषा में पर्यावरण कहते हैं।

प्रदूषण विकसित देशों की देन

मजे की बात यह है कि पर्यावरण के इस संकट से पृथ्वी को बचाने के लिए जो देश सामने आ रहे हैं वे वही देश हैं जिन्होंने सबसे अधिक पर्यावरण को नष्ट किया है। जून 1992 में हुए रिओ सम्मेलन में 178 देशों के प्रतिनिधियों का भाग लेना इस बात का स्पष्ट प्रतीक है कि पर्यावरण संरक्षण अब सभी देशों की प्राथमिकताओं में आ चुका है। इस Earth Summit अथवा धरती शिखर में प्रतिनिधिगण धरती के हत्यारों को ढूंढते रहे जबकि वे हत्यारे वहीं उनकी आंखों के सामने मौजूद थे। जिन वृक्षों की सुखद बयार से हमारी आंखें शीतल हो जानी चाहिए इसी सम्मेलन में इन्हीं वृक्षों से धू धू करके जलने से निकलता धुआं हमारी आंखों को आंसुओं से नहला रहा था और शायद यही अर्ध्य चढ़कर हम रियो सम्मेलन से लौटे थे।

आर्थिक विकास प्राकृतिक संपदा के दोहन के बगैर नहीं हो सकता इसमें कोई संदेह नहीं परन्तु यह सब सीमाओं के भीतर ही हो, यह जरूरी है कि प्रकृति का दोहन हो–शोषण नहीं। दुनिया से गरीबी के कैंसर को खत्म करना होगा क्योंकि गरीबी आज भी सारी मुसीबतों की जड़ है। गरीब देश अपने को जिंदा रखने के लिए हरे–भरे वनों को मार डालते हैं। उनकी गरीबी हटेगी तो उनका पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा। पर्यावरण को सधारने के लिए सभी को सामने आना होगा–विशेष रूप से अमीर देशों को। विकासशील तीसरी दुनिया के देशों को अपने विकास के माडल को अब नए सिरे से तैयार करना होगा जिससे पर्यावरण पर अधिक दबाब न पड़े। अत्यधिक जनसंख्या धरती पर अधिकाधिक दबाव डालती है – उस पर अंकुश लगाना होगा।

सबसे जरूरी बात होगी आर्थिक विकास से जुड़े विभिन्न उत्पादनों, प्रदूषणकारी तकनीकों की समाप्ति और इन तकनीकों के हरे विकल्पों की खोज। यह जानकारी उन्नत पश्चिमी देश पूरे विश्व को उपलब्ध कराएं यह बहुत जरूरी है। इसके बावजूद पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए और प्रदूषण को रोकने के लिए नियम कानून बनाए जाएं और उनका पूरी कड़ाई से पालन किया जाए। अमीर देश जिन्हें हम उत्तरी गोलार्ध के देश कहते हैं, अपने गरीब दक्षिणी गोलार्ध के देशों के लोगों का, वहां की प्राकृतिक संपदा का शोषण न करें, यह बहुत जरूरी है। इन देशों के आर्थिक विकास के नाम पर इन्हें प्राकृतिक रूप से बर्बाद न करें यह बहुत जरूरी है। यह सचमुच संतोष की बात है कि दुनिया की 20 प्रतिशत आबादी वाले पश्चिमी देशों ने शेष धरती के 80 प्रतिशत संसाधनों के उपयोग की अपनी जो एक विशिष्ट अति सम्पन्न जीवन पद्धति अपनाई है उसकी ओर सर्वाधिक ध्यान दिलाया पश्चिमी देशों के अपने स्वयंसेवी संगठनों ने। अब इसी को आधार बनाया जाएगा विभिन्न देशों द्वारा अपनी आर्थिक विकास की नीतियों को लागू करते समय। अमरीका के साथ–साथ जर्मनी, जापान और ब्रिटेन भी पूरे विश्व को आर्थिक मदद देंगे – पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए।

लेकिन इन सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा फिर घूम फिरकर वहीं आ जाता है – आर्थिक विकास को लेकर। विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में अपरिमित आर्थिक सत्ता को केन्द्रित होने देना क्या पर्यावरण को नष्ट

(शेष पृष्ठ 42 पर)

जुगाड़ : ग्रामीण सड़कों का राजा

राजन मिश्रा

देश का अर्थतंत्र तथा जनसंख्या का बढ़ता हुआ भार मुख्य रूप से कृषि पर ही आधारित है। अतः गांव की उपज को शहरों तक पहुंचाने के लिए ग्रामीण इलाकों को नगरीय इलाकों से जोड़ना अनिवार्य है। किन्तु धन की विवशता के कारण न तो पक्की सड़कें उपलब्ध हैं और न ही पुलों तथा पुलियों का निर्माण हो सका है। सड़क मार्ग के अभाव में हमारे देश के ग्रामीण अंचलों की लगभग 70 प्रतिशत प्रसूतिकाओं को समय पर निकटस्थ मातृ सदन में नहीं पहुंचाया जा सकता और न ही मातृ सदन और परिवार कल्याण केन्द्र के चिकित्सक वहां पहुंच पाते हैं। फलतः जच्चा और बच्चा दोनों की जान को खतरा होने की सम्भावना रहती है। देश में 1950–51 में कुल चार लाख कि.मी. लम्बी सड़कें थीं किन्तु वर्तमान समय में लगभग 20.5 लाख कि.मी. लम्बी सड़कें हैं लेकिन इसमें से केवल 10.25 लाख कि.मी. की सड़कें ही पक्की कहीं जा सकती हैं। इन पक्की सड़कों का गुणवत्ता का स्तर आधुनिक युग की मांगों के अनुसार नहीं है। वाहनों की संख्या और भार परिवहन की प्रौद्योगिकी में तेजी से हुए परिवर्तन और वृद्धि को देखते हुए भारतीय सड़कें अभी आदिम युग में हैं।

आज आदिम युग की सड़कों को चुनौती देने के लिए, ग्रामीण मस्तिष्क ने अपनी कुशलता, तकनीकी, योग्यता और ग्रामीण संसाधनों का प्रयोग करते हुए जिस वाहन का निर्माण किया, उसे "जुगाड़" के नाम से जाना जाता है। आज यह इस दावे को मिटा रहा है कि बिना सड़क के ग्रामीण विकास सम्भव नहीं है।

आज आदिम युग की सड़कों को चुनौती देने के लिए, ग्रामीण मस्तिष्क ने अपनी कुशलता, तकनीकी, योग्यता और ग्रामीण संसाधनों का प्रयोग करते हुए जिस वाहन का निर्माण किया, उसे "जुगाड़" के नाम से जाना जाता है। आज यह इस दावे को मिटा रहा है कि बिना सड़क के ग्रामीण विकास सम्भव नहीं है।

एक अनुमान के अनुसार करीब उत्तर प्रदेश में ही करीब 12,000 जुगाड़ हैं। प्राय गांव में इसे "जहाज" के नाम से जाना जाता है। जुगाड़ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अभी तक इसको चलाने के लिए ड्राइविंग लाइसेंस की आवश्यकता नहीं है तथा न ही इस पर कोई वाहन नम्बर मिलता है। ग्रामीण संसाधनों का यह बेजोड़ 'जहाज' आज गांव के विकास में अहम भूमिका निभा रहा है। इस वाहन को एक ट्राली द्वारा चलाया जाता है। ईंधन के रूप में डीजल प्रयुक्त किया जाता है। एक जुगाड़ 8/10 हार्स पावर की ट्राली से चलता है। ऐसा देखा जाता है कि एक जुगाड़ करीब 2,500 कि.ग्रा. वजन आसानी से ले जाता है। जुगाड़ द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय जाने वाले बच्चे, जच्चा या कोई मरीज, खाद, बीज और अन्न को पहुंचाया जाता है।

कई बार दुर्घटनाओं के कारण 'जुगाड़' के भविष्य पर प्रश्न उठ चुके हैं किन्तु इसकी उपयोगिता को देखते हुए सभी प्रश्नों को नकार दिया गया है।

अन्ततः किसानों को यह 'जहाज' ग्रामीण विकास में एक ऐसे अध्याय के रूप में जुड़ चुका है जिसको बंद करने की नहीं बल्कि तराशने की जरूरत है। ❑

आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक

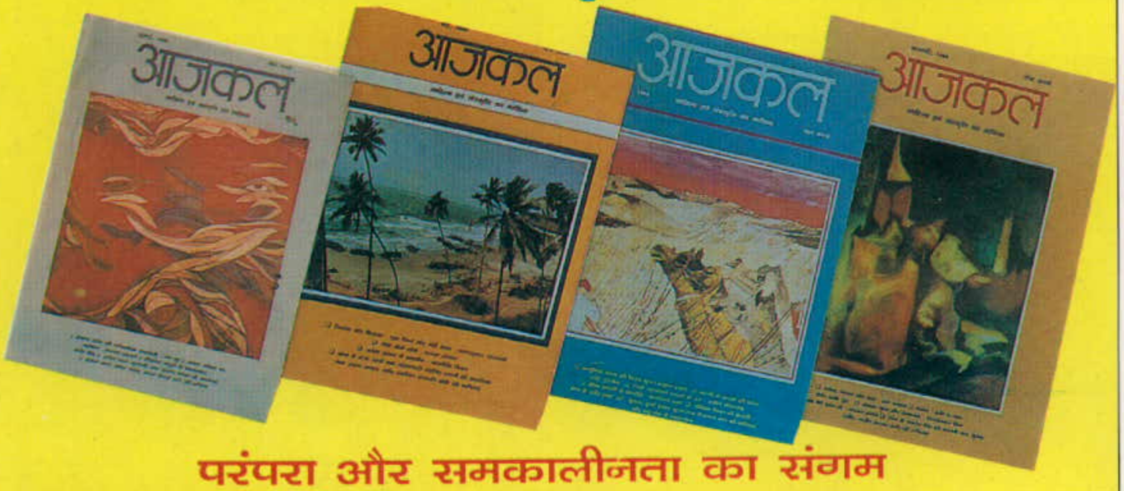

परंपरा और समकालीनता का संगम

हर महीने पढ़िए :

- साहित्य के मर्म की पहचान कराने वाले सारगर्भित लेख
- विद्वान लेखकों की विश्लेषणात्मक टिप्पणियां
- जीवन की गहराइयों को उद्घाटित करती कहानियां
- जिंदगी की मीठी-कड़वी अनुभूतियों को छूती कविताएं

अपने समाचारपत्र विक्रेता से लें या फिर नियमित ग्राहक बनें

चंदे की दरें : □ एक वर्ष : 70 रु. □ दो वर्ष : 135 रु. □ तीन वर्ष : 190 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग के नाम बनवाएं और निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग
पत्रिका एकांश, पूर्वी ब्लाक-4 , लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066, दूरभाष : 6105590

इन स्थानों पर भी उपलब्ध है

विक्रय केन्द्र : प्रकाशन विभाग □ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 □ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 □ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 □ कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 □ 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 □ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009 □ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 □ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 □ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 □ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 □ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034.

विक्रय केंद्र : पत्र सूचना कार्यालय □ सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) □ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 □ बी-7, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर (राजस्थान)

उचित ढंग से हो कूड़े–करकट का निपटान

डा. दिनेश मणि

आजकल कूड़े करकट का निपटान एक बड़ी समस्या बन गया है। बढ़ते औद्योगीकरण के साथ साथ हमारे देश में कूड़े करकट की मात्रा बढ़ती जा रही है और इसके निपटान के लिए कोई वैज्ञानिक विधि नहीं अपनायी जाती है। कूड़ा बीनने वाले कुछ सामान उसमें से निकालकर इसकी मात्रा कम करने में सहायता करते हैं। नगरपालिकाएं गड्ढा भराव से इनका निपटान करती हैं। कम्पोस्टिंग द्वारा इसका निपटान किया जा सकता है लेकिन इसमें खर्च बहुत आता है। लेखक का कहना है कि कूड़े करकट का निपटान बहुत सावधानी से करना चाहिए ताकि इससे प्रदूषण की समस्या पैदा न हो।

प्रायः नगरीय तथा देहाती क्षेत्रों में अनेक वस्तुओं की रोजाना खपत होती है और तत्पश्चात बहुत से अवशेष प्राप्त होते हैं। इनमें से कुछ का तो उपयोग पुनर्चक्रण द्वारा सम्भव होता है परन्तु कुछ अवशिष्ट पदार्थ पूर्णतया अनुपयोगी होते हैं जिनके निस्तारण की उचित व्यवस्था न होने पर प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आजकल खासकर शहरी क्षेत्रों में ठोस व्यर्थ पदार्थों का निस्तारण एक समस्या बन चुकी है। ठोस व्यर्थ पदार्थों से होने वाला प्रदूषण उतना ही हानिकारक है जितना किसी अन्य स्रोत से होने वाला। शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप कूड़े–करकट, मल–मूत्र आदि की मात्रा में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। हालांकि इन पदार्थों का सूक्ष्म जीवों द्वारा निश्चित मात्रा में विच्छेदन होता रहता है किन्तु जब कूड़ा–करकट तथा मल अत्यधिक हो जाता है तो फिर उनका विघटन सम्भव नहीं हो पाता है।

प्रकृति में और समाज में हमेशा पुनर्चक्रण की प्रक्रिया चलती रहती है। फलस्वरूप, एक प्रकार का कूड़ा दूसरे प्रकार में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। पुनर्चक्रण द्वारा पुराना लोहा, प्लास्टिक, कांच, कागज आदि वस्तुएं घूम फिरकर एक नया रूप लेकर हमारे सामने आ जाती हैं। फिर भी कूड़े की निरन्तर बढ़ती मात्रा एक गम्भीर समस्या का रूप लेती जा

* डी.एस.सी., प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–211002

रही है। दूसरी ओर मनुष्य द्वारा उपयोग में लाई गई विभिन्न वस्तुओं के अवशेषों तथा कूड़े से कई महत्वपूर्ण जानकारियां भी प्राप्त होती हैं। प्राचीन सभ्यताओं से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जानकारियां उस काल के निवासियों द्वारा छोड़े गए अवशेषों से ही प्राप्त हुई है।

इसी प्रकार से अस्पतालों को अपने कचरे का इंतजाम सामान्य कचरे से अलग करना होता है। ये या तो इसे जला डालें या अन्य कचरे में मिलाने से पूर्व इसे जीवाणु रहित बनाएं। अस्पताल के कचरे की परिवहन व्यवस्था भी अलग से करनी होती है।

खुदाई में प्राप्त मिट्टी के टूटे बर्तन, खिलौने, मूर्तियां आदि उस समय के जीवन–यापन के बारे में बहुत कुछ कह जाते हैं। हमारे द्वारा उत्पन्न आज का कूड़ा करकट भी सम्भवतः भविष्य में हमारी सभ्यता के विषय में कुछ जानकारी दे सकेगा।

शहर के विभिन्न हिस्सों के कचरे की किस्म और मात्रा में काफी अंतर होता है। उदाहरण के लिए झुग्गी–झोपड़ियों और बस्तियों के कचरे में जैव–पदार्थों की मात्रा अधिक होती है। वास्तव में कचरे का प्रकार तथा मात्रा उपभोग, उत्पादन तथा वृद्धि पर निर्भर है। उपभोग की शैली के अनुसार पूरे देश के स्तर पर प्रति व्यक्ति कचरा 100 ग्राम से 600 ग्राम प्रतिदिन के बीच होता है। औसत कचरा प्रतिदिन 330 ग्राम होता है। मसलन बंगलौर में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 500 ग्राम कचरा उत्पन्न होता है अर्थात पूरे शहर में प्रतिदिन 2000 टन कचरा उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार दिल्ली में प्रतिदिन 4,800 टन और मुम्बई में 6,285 टन कचरे का अनुमान लगाया गया है। यहां कचरे का तात्पर्य मात्र नागरिक कचरे से है। इसमें उद्योगों से सीधे निकलने वाला कचरा शामिल नहीं है। बड़े उद्योगों से उम्मीद की जाती है कि वे अपने कचरे का स्वयं निपटान करें। मात्र छोटे उद्योगों में कई बार यह स्थिति बनती है कि उनका कचरा नगर पालिका के जिम्मे आ जाता है। इसी प्रकार से अस्पतालों को अपने कचरे का इंतजाम सामान्य कचरे से अलग करना होता है। ये या तो इसे जला डालें या अन्य कचरे में मिलाने से पूर्व इसे जीवाणु रहित बनाएं। अस्पताल के कचरे की परिवहन व्यवस्था भी अलग से करनी होती है। वैसे बड़े उद्योग, अस्पताल आदि ईमानदारी से अपनी जिम्मेदारियों का पालन नहीं करते।

ऐसा अनुमान है कि शहरी क्षेत्रों में उत्पन्न म्युनिसिपल कचरे में से 40 से 75 प्रतिशत तक जैव पदार्थ होता है। हालांकि कचरे का संघटन काफी हद तक निवासियों की माली हालत पर भी निर्भर है। जैसे गरीब क्षेत्रों में घरेलू कचरे के अलावा विभिन्न अनौपचारिक जीवन यापन क्रिया–कलापों का कचरा भी होता है।

देश के किसी भी शहर की ओर देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि ठोस कचरे के प्रबंधन में कितनी उपेक्षा बरती गई है। पर्यावरणीय ह्रास और सेहत संबंधी मुद्दे तो इससे जुड़े ही हैं, साथ ही इससे शहरी विकास के आर्थिक तथा संस्थागत सरोकारों का भी पता चलता है। कचरे के प्रबंधन हेतु उपलब्ध व्यापक ढांचा तथा निवेश के बावजूद यह स्थिति है।

कचरे को नियत डिब्बे में डालना लोगों को काफी असुविधाजनक लगता है इसलिए सामान्यतः सारा कचरा फुटपाथों, गलियों के किनारे या खुली नालियों में फेंका जाता है। जब लोग कचरा–डिब्बे में कचरा फेंकते ही हैं, तो भी थोड़ी दूर से। लिहाजा कचरा डिब्बे के इर्द–गिर्द बिखरा होता है। इससे अस्वास्थ्यकर स्थिति तो निर्मित होती ही है, साथ ही म्यूनिसिपल कर्मचारियों के लिए इस कचरे को उठाकर ले जाना भी मुश्किल हो जाता है। जहां कचरा फेंकने के लिए पक्के ढांचे बनाए जाते हैं उनकी दीवारों के किनारे कचरा पड़ा ही रहता है और सड़ने लगता है। यह भी देखा गया है कि कचरे के डिब्बे कई बार उपयुक्त जगह पर नहीं रखे होते हैं। जब कई बार लोग अन्य सुविधाजनक स्थानों पर कचरा फेंकने लगते हैं।

कचरे के प्रकार से यह तय होता है कि कितनी जल्दी–जल्दी इसे हटाना जरूरी है। जब कचरे में जैव पदार्थों की मात्रा ज्यादा हो तथा जलवायु गर्म हो तो कचरा ज्यादा जल्दी सड़ने लगता है। ऐसी परिस्थिति में यदि

कम्पोस्ट पेट्रोलियम पदार्थों के आयात को कम करने में भी सहायक हो सकता है। किन्तु इसकी लागत ज्यादा होने की वजह से नगर–पालिकाएं कचरा प्रबन्धन में इसका इस्तेमाल करना पसन्द नहीं करतीं। जहां गड्ढा भराव विधि में खर्च मात्र 10 रुपया प्रति टन आता है वहीं कम्पोस्टिंग का खर्च 250 रुपये प्रति टन होता है।

कचरा पड़ा रहे तो बदबू फैलती है और सेहत के लिए खतरा पैदा होता है। भारत जैसे देशों में कचरे में जैव पदार्थ की मात्रा ज्यादा होती है, जलवायु गर्म है और रहने की जगह भी तंग है, अतः यहां कचरे को जल्दी–जल्दी हटाना एक महत्वपूर्ण चीज है। कागजों पर तो कचरा उठाने का काम प्रतिदिन किया जाता है, मगर हकीकत में ऐसा होता नहीं है। सड़कों को बुहारा जाना भी नियमित नहीं होता। आमतौर पर किसी इलाके के बाशिन्दों का सामाजिक आर्थिक स्तर जितना कम होगा, उतनी ही देर में कचरा उठाया जाएगा। कचरे का निपटारा कई तरह से किया जाता है। अनियंत्रित ढेर लगाना, नियंत्रित ढंग से गड्ढे भरने में लगाना, कम्पोस्ट बनाना या जला डालना। इनमें से सबसे आम तरीका है शहर के आसपास गड्ढो में कचरा भरते जाना (लैण्ड फिल) एक अनुमान के मुताबिक 90 प्रतिशत संग्रहीत कचरे का निपटारा इस ढंग से होता है। उल्लेखनीय है कि भारत में अधिकतर लैण्डफिल स्थल अनियंत्रित ढेरनुमा होते हैं,

न कि स्वच्छ लैण्डफिल। इनमें घरेलू, औद्योगिक, व्यापारिक तथा अस्पताली कचरा एक साथ भरा जाता है। न तो इस कचरे पर कोई नियमित कवर डाला जाता है और न ही इसे दबाकर सघन बनाया जाता है। कई बार तो यह कचरा किसानों की जमीन पर गैर कानूनी रूप से डाला जाता है। इस ढंग से कचरे का निपटारा करने की वजह से कई समस्याएं पैदा होती हैं – भूजल का प्रदूषण तथा मक्खियों, चूहों आदि से जुड़ी समस्याएं और बदबू आदि। यह तो प्रायः नहीं होता कि कचरा फेंकने निपटाने की जगह चुनने से पहले स्थानीय निकाय यह जांच करे कि इसका पर्यावरण पर क्या असर होगा। कहीं भी गड्ढा दिखे तो कचरा भरना शुरू कर दिया जाता है। यह सही है कि लैण्डफिल (गड्ढा भराव) विधि सबसे आसान है तथा (यदि जमीन की कीमत न गिनें तो) सबसे सस्ती भी होती है, परन्तु इसके लिए सही जगह का चुनाव करना जरूरी होता हैं। जमीन की उपलब्धता में कमी तथा पर्यावरण में दृष्टिकोण से यह विधि कम आकर्षक है। स्वाभाविक है कि कचरा फेंकने के वास्तविक स्थान और गड्ढा भराव की जगह के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। दिल्ली में इस वक्त 6 मुख्य गड्ढा भराव स्थल हैं तथा ये कचरा संग्रह करने के स्थानों से 15 से 20 किलोमीटर दूर हैं।

इस बात को अब पहचाना जाने लगा है कि कचरा दरअसल एक महत्वपूर्ण संसाधन है। कचरे से कई संसाधन प्राप्त करना संभव है। इनमें अकार्बनिक पदार्थों की पुनः प्राप्ति कम्पोस्टिंग और ऊर्जा उत्पादन प्रमुख तरीके हैं।

अकार्बनिक (गैर जैविक) पदार्थों की पुनः प्राप्ति कई स्तरों पर की जाती है। मसलन कागज और कांच की शीशियां रद्दी वालों को बेची जाती हैं, फिर सामुदायिक कचरा स्थल से बीनने वाले कई चीजें उठा लेते हैं, सफाई कर्मचारियों द्वारा परिवहन के दौरान कचरे में से चीजें बीनी जाती हैं तथा अन्ततः कचरा फेंकने की बड़ी जगहों से कचरा बीनने वाले चीजों को बीनते हैं। इस प्रकार से कचरे में से कितनी पुनः प्राप्ति की जाती है, यह अनुमान लगाना मुश्किल है, फिर भी कुछ अनुमान अवश्य लगाए गए हैं, जिनके मुताबिक पुनः प्राप्ति 6–7 प्रतिशत से लेकर 15 प्रतिशत तक आंकी गई है।

बहरहाल, कचरे से संसाधन प्राप्ति के ये काम जिन हालातों में किए जाते हैं वे काफी घटिया हैं। इस बात का कोई प्रयास नहीं हुआ है कि कचरे के स्रोत पर ही छंटाई करके पुनः प्राप्ति को बढ़ावा दिया जाए। एक अन्य विधि कम्पोस्ट बनाने की है। कचरे में मौजूद जैव पदार्थ का उपयोग मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में किया जा सकता है। भारत में कुछ शहरों में यांत्रिक विधि से कम्पोस्ट बनाने के प्रयास हुए मगर इसकी लागत बहुत ज्यादा आती है तथा कम्पोस्ट की कीमत बहुत बढ़ जाती है। यह जरूर है कि कम्पोस्ट रासायनिक उर्वरक का एक अन्य विकल्प है तथा इससे मिट्टी के सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिलते हैं। कम्पोस्ट पेट्रोलियम पदार्थों के आयात को कम करने में भी सहायक हो सकता है। किन्तु इसकी लागत ज्यादा होने की वजह से नगरपालिकाएं कचरा प्रबन्धन में इसका इस्तेमाल करना पसन्द नहीं करतीं। जहां गड्ढा भराव विधि में खर्च मात्र 10 रुपया प्रति टन आता है वहीं कम्पोस्टिंग का खर्च 250 रुपये प्रति टन होता है। एक दिक्कत यह भी है कि कम्पोस्ट योग्य पदार्थ कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने का कार्य बायोगैस के रूप में भी होता है तथा इसे जलाकर बिजली उत्पादन भी किया जा सकता है। परन्तु यह देखा गया है कि भारत में कचरे में धूल और मिट्टी की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। इसे जलाने के लिए ईंधन की जरूरत होती है। इस वजह से पूरी प्रक्रिया काफी मंहगी साबित होती है। इसका एक उदाहरण दिल्ली में 20 करोड़ रुपये की लागत से 300 टन कचरे को जलाने के संयंत्र में देखने को मिलता है। इस संयंत्र की असफलता का सबसे बड़ा कारण यह था कि उपलब्ध कचरे की उष्मा क्षमता संयंत्र के लिहाज से काफी कम थी। अन्ततः इसे बन्द कर देना पड़ा।

कचरे को यहां–वहां फेंकने से पानी तथा हवा के प्रदूषण की समस्या पैदा होती है। यदि कचरा समय से हटाया न जाए तो स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा होता है। गलत स्थान पर गड्ढा भराव करें तो भूजल का प्रदूषण होता है। वर्षा के समय सतही पानी में भी प्रदूषण हो सकता है। वायु प्रदूषण का एक कारण यह होता है कि कचरे के ढेरों को लापरवाही से जला दिया जाता है।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कार्यालयों/प्रयोगशालाओं से निकले कूड़े में महत्वपूर्ण फार्मूले हो सकते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थानों से फेंका गया कूड़ा भी महत्वपूर्ण हो सकता है और इस प्रकार के कूड़े के गलत इस्तेमाल से व्यक्ति/समाज/देश का भविष्य खतरे में पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त कूड़ें में बहुमूल्य धातुएं/वस्तुएं भी हो सकती हैं जिन्हें दफना देने से आर्थिक हानि होती है, अतः कूड़े के निस्तारण से पूर्व उस पर एक दृष्टि अवश्य डाल लेनी चाहिए। ❑

दोहे

प्रो. सुभाष वर्मा

वो बचपन के खेल सलोने, औ पीपल की छांव।
याद सताये तो मन करता, लौट चलूं फिर गांव।।

काले काले वो जामुन, औ झरबेरी के बेर।
जुम्मन चाचा लिए हाथ में, मुझे लगाते टेर।।

सारा दिन नदिया पर खेले, सांझ हुई घर आय।
अम्मा की गोदी में छुपना, डांट पिता की खाय।।

मित्र मंडली साथ ले, चोरी करके आम।
खाकर के खलिहान में, लौटे अपने धाम।।

गेहूं के खलिहान में, चलती थी जब दांय।
तब गाड़ी पर बैठकर, सखा सभी हर्षायं।।

रहट खींच कर हाथ से, बैल बैल का खेल।
नकली कोल्हू से पिरे, नित बालू का तेल।।

बातें बचपन की सभी, अब हो गईं अतीत।
अब गावों में भी नहीं, रही पुरानी प्रीत।।

दम घुटता है शहर में, प्रदूषण और शोर।
ऐसे में अब गांव की याद सताती जोर।।

किशोरावस्था शिक्षा : आज की आवश्यकता

– सत्यपाल मलिक

किशोरावस्था मानव जीवन की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। बचपन से जवानी की ओर कदम रखने की उम्र। बचपन, जवानी और बुढ़ापा, उम्र के तीनों दौर के बीच किशोरावस्था एक अत्यन्त ही संवेदनशील एवं नाजुक अवधि है। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था और ग्रामीण संस्कृति वाले हमारे समाज में प्रायः यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति बचपन से सीधे जवानी की अवस्था में प्रवेश करता है। जैसा कि पहले बड़े पैमाने पर होता आया है और आज भी कई ग्रामीण इलाकों में हो रहा है, बच्चों को बड़ों की जिम्मेदारी लेने के लिए बहुत जल्दी ढकेल दिया जाता है। शीघ्र विवाह की परम्परा जो कि ज्यादातर मामलों में बाल–विवाह ही होता है, बच्चों द्वारा वयस्कों की भूमिका ग्रहण करने की प्रक्रिया को तेज करता है। शादी के तुरन्त बाद या शादी के अवसर पर बालक या बालिका यह सोचते हैं कि वे जवान हो गए हैं या बड़े हो गए हैं। आजकल शादी की उम्र बढ़ने के साथ–साथ यौवनारंभ (Puberty) की प्रारंभिक उम्र भी बढ़ी है क्योंकि बच्चों की सेहत तथा पोषण स्तर की बेहतर देखभाल होने लगी है। इस विकास ने बचपन और जवानी के बीच के अंतर को बढ़ा दिया है। अब एक लम्बा समयकाल ऐसा होता है जिस दौरान व्यक्ति को न तो बालक और न ही जवान कहा जा सकता है। यही काल किशोरावस्था कहलाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरावस्था सामान्यतः 10 से 19 वर्ष की आयु तक चलती है। किशोरावस्था की दहलीज पर आते ही व्यक्ति के हारमोन में परिवर्तन होने लगते हैं। यह जीवन की सबसे सुन्दर, विचित्र अनुभवों वाली तथा उत्सुकता से भरी अवस्था है। इस समय किशोर–किशोरियों के सामने रंगीन सपनों का झिलमिलाता स्वरूप उभरने लगता है, जो उनके भावी जीवन को प्रभावित करता है। शारीरिक–मानसिक बदलाव और विकास उनके जीवन में उथल–पुथल मचा देते हैं। इस दौरान शारीरिक वृद्धि एवं विकास की प्रक्रियाएं अचानक और बहुत तेजी से होती हैं। यह वह विशिष्ट अवधि है जब अन्य यौन लक्षणों (Secondary Sexual Characteristics) का विकास हाने लगता है।

किशोरावस्था मानसिक, बौद्धिक तथा भावात्मक परिपक्वता की भी अवधि है। किशोर–किशोरी बच्चों की तरह दूसरों पर

निर्भर रहने के बजाय जवानों की तरह आज़ाद रहना पसंद करते हैं। प्यार की भावनाएं प्रधान होती हैं। प्यार और आकर्षण, विशेषकर विपरीत लिंग की तरफ होता है। उन्हें विपरीत लिंग से बात करना या उनके करीब रहना अच्छा लगता है। अधिकतर माता–पिता उनके इस व्यवहार को स्वाभाविक नहीं समझते जबकि यह उनके अन्दर के बदलाव का स्वाभाविक परिणाम है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक बदलाव में उलझे किशोर–किशोरियों को उचित परामर्श और बर्ताव की जरूरत होती है।

हमारे ग्रामीण संस्कृति वाले समाज में किशोर–किशोरियों में अनचाहे गर्भधारण एवं एच.आई.वी./एड्स जैसे यौन रोगों से बचाव की जानकारी की बेहद कमी होती है। समय से पहले शादी करने की प्रथा लड़कियों को कम उम्र में ही मां बना देती है। उन्हें मां बनने की जिम्मेदारियों का ज्ञान नहीं होता और न इस बात की जानकारी होती है कि उन्हें गर्भधारण के दौरान क्या सावधानियां बर्तनी हैं तथा किस तरह की खुराक लेनी है। ऐसी दशा में छोटी उम्र में बनी माताएं तो बीमारी एवं मृत्यु से जूझती ही हैं उनके बच्चे भी बीमार रहते हैं। समय से पहले विवाह करने और समय से पहले मां बनने की प्रथा जिन ग्रामीण इलाकों में है, वहां की महिलाओं का न तो शारीरिक एवं मानसिक विकास ठीक प्रकार से हो पाता है और न ही वे अपनी शिक्षा पूरी कर पाती हैं। इसका उनके भावी जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

अतः किशोरावस्था की शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं के अतिरिक्त हमारे किशोर–किशोरियों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, समय से पहले विवाह की सामाजिक कुप्रथा का भी शिकार होना पड़ता है।

किशोर अपने व्यक्तित्व में होने वाले इन नाटकीय एवं तीव्र बदलावों को ठीक से समझ नहीं पाते हैं। इनके चिन्तन एवं व्यवहार में आने वाले स्वाभाविक बदलावों को माता–पिता, परिवार और समाज के वयस्क सदस्य भी ठीक से समझने की कोशिश नहीं करते। न तो माता–पिता और न ही शिक्षक, किशोर के इन बदलावों को ठीक से समझने में उसकी सहायता करते हैं। अनेक अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि ज्यादातर माता–पिता यह महसूस करते हैं कि किशोर–किशोरियों को यौन संबंधित शिक्षा देने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि बड़े होने पर वे स्वयं ही सीख जांएगे। उन्हे इस बात का भी डर होता है कि कहीं इस बारे में ज्ञान किशोरों को बिगाड़ न दे। जब किशोरों को किसी विश्वस्त स्रोत से जानकारी नहीं मिलती तो वह हम उम्र के लोगों पर निर्भर हो जाते हैं पर उनको भी सही जानकारी नहीं होती। इसके अतिरिक्त वे यौन विषयों पर प्रकाशित सस्ते साहित्य का सहारा लेते हैं जो उन्हें और भी भ्रमित कर देता है। अतः वे अपने अन्दर होने वाले बदलाव तथा विकास के प्रति अनेक गलतफहमियों के शिकार हो जाते हैं। इसका गलत असर किशोरों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। अनेक किशोर गलत व्यवहार करने के आदी हो जाते हैं तथा कई बार नशीले पदार्थों के भी शिकार हो जाते हैं।

इन समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में यह गंभीरता से महसूस किया जाने लगा है कि विद्यालय में किशोरावस्था शिक्षा दी जानी चाहिए। जनसंख्या और विकास पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन की कार्य–योजना, जिस पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए हैं, में कहा गया है कि किशोरों की आवश्यकताएं और समस्याएं जनसंख्या कार्यसूची (Population Agenda) के अनिवार्य अंग हैं। इसमें स्वास्थ्य–संबंधी आवश्यकताओं और विशेषतः एक समूह के रूप में किशोरों के प्रजनन–स्वास्थ्य की आवश्यकताओं की लगातार होने वाली अवहेलनाओं को ध्यान में रखा गया है। कार्यसूची ने किशोरों की विशिष्ट जरूरतों को मद्देनजर रखते हुए सिफारिश की है कि उन्हें प्रजनन–स्वास्थ्य के संबंध में पर्याप्त जानकारी दी जाए ताकि वे उत्तरदायित्वपूर्ण फैसले लेने में सक्षम हो सकें। भारत में अक्तूबर 1997 में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया एक बड़ा कार्यक्रम जिसे *प्रजनन और बाल स्वास्थ्य (आर.सी.एच.) कार्यक्रम* के रूप में जाना जाता है, में किशोर–किशोरियों के लिए विशेष रणनीतियां बनाने पर बल दिया गया है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत किशोर–किशोरियों को एक ऐसा विशेष समूह माना गया है जिन्हें सूचना एवं परामर्श सेवाओं के साथ–साथ प्रजनन और स्वास्थ्य देख–रेख की जरूरत है। सार्क (SAARC) देशों के साथ मिल कर इस विषय पर रणनीतियां तैयार करने हेतु जुलाई 1998 में भारत में दक्षिण एशिया के देशों का एक विशेष सम्मेलन किया गया। हाल ही में जारी भारत सरकार की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में भी किशोर शिक्षा पर विशेष महत्व दिया गया है। इस नीति के अनुसार :

"किशोर भारत की जनसंख्या के पांचवें हिस्से का प्रतिनिधित्व करते हैं। अवांछनीय गर्भों और यौन संचारित रोगों से सुरक्षा सहित किशोरों की आवश्यकताओं की ओर अतीत में विशिष्ट रूप से ध्यान नहीं दिया गया है। कार्यक्रमों के जरिये देरी से शादी करने और गर्भ धारण करने को प्रोत्साहित करना चाहिए और असुरक्षित यौन संबंधों से होने वाले खतरों के बारे में किशोरों को शिक्षित करना चाहिए। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों, जहां किशोरावस्था में विवाह तथा गर्भ धारण व्यापक रूप से व्याप्त है, में किशोर वर्ग के लड़के और लड़कियों के लिए प्रजनन एवं स्वास्थ्य सेवाएं विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं में सूचना, परामर्श, जनसंख्या संबंधी शिक्षा और गर्भनिरोधक सेवाओं को सुलभ और वहनीय बनाना, एकीकृत बाल विकास योजना के जरिये खाद्य अनुपूरक और पोषण सेवाएं उपलब्ध कराना और बाल विवाह अवरोध अधिनियम, 1976 को लागू करना शामिल है।"

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति 2000 में किशोरावस्था शिक्षा संबधित व्यावहारिक कार्यनीतियां भी सुझाई गई हैं जो इस प्रकार हैं :

(क) सुलभ प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं सहित जानकारी, परामर्श और अन्य सेवाओं तक किशोरों की पहुंच को सुनिश्चित करना। किशोरों और नव–विवाहितों दोनों (जो किशोर भी हो सकते हैं) को परामर्श प्रदान करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और उपकेन्द्रों को सुदृढ़ करना।

(ख) किशोरों के लिए एकीकृत बाल विकास योजना के अन्तर्गत उपलब्ध सेवाओं के पौषणिक पैकेज की व्यवस्था करना।

(ग) किशोरावस्था में गर्भावस्था की दर को कम करने के लिए बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1976 को लागू करना। अठारह वर्ष से कम आयु की लड़कियों के विवाह, जो कानूनी रूप से सही नहीं हैं, को रोकना राष्ट्रीय चिंता का विषय होना चाहिए।

(घ) शहरी मलिन बस्तियों, दूर–दराज के ग्रामीण क्षेत्रों, सीमावर्ती जिलों और आदिवासी आबादी में जहां बुनियादी सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं ऐसे पाकेटों में एकीकृत कार्य–कलापों की व्यवस्था करना।

उपर्युक्त वर्णित कार्यनीतियों के अनुसार विद्यालयी शिक्षा पद्धति, प्रोढ़ शिक्षा एवं उच्चत्तर शिक्षा पद्धति में किशोरावस्था शिक्षा के तत्वों को शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है। विद्यालयी स्तर पर दो प्रकार के व्यापक दृष्टिकोणों को अपनाया जाएगा – पाठ्यक्रमीय तथा सहपाठ्यक्रमीय। स्कूली पाठ्यक्रम में किशोरावस्था शिक्षा लागू करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए हाल ही में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली की जनसंख्या शिक्षा परियोजना द्वारा किशोरावस्था शिक्षा पर "विद्यालयों में किशोरावस्था शिक्षा : बुनियादी जानकारियों का पैकेज" नामक प्रशिक्षण पैकेज तैयार किया है। यह पैकेज निम्नलिखित पांच भागों में विभक्त है:–

1. किशोरावस्था शिक्षा : सामान्य रूपरेखा
2. किशोरावस्था शिक्षा : मूल जानकारी
3. किशोरावस्था शिक्षा : प्रश्नोत्तरी
4. किशोरावस्था शिक्षा : छात्र–क्रियाशीलन
5. किशोरावस्था शिक्षा : व्यस्कों की भूमिका

इस पैकेज को राज्यों को भेजा गया है जो इसे आधार मान कर अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए अपनी–अपनी क्षेत्रीय भाषा में इसका रूपान्तरण तैयार कर रहे हैं। जिसे वे अपने राज्य में प्रशिक्षण के लिए अपनाएंगे।

इसके अतिरिक्त जिला स्तर पर कुछ चुने हुए विद्यालयों में व्याख्यानमाला, विद्यालयों के प्रधानों और पंचायत प्रतिनिधियों के लिए एडवोकेसी कार्यक्रम, तथा शिक्षकों एवं अभिभावकों, विशेषरूप से माताओं के लिए सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है। इस दिशा में ग्रामीण क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इस तरह के सम्मेलनों में यह स्पष्ट हुआ है कि माताएं भी अब यह महसूस करने लगी हैं कि बालिकाओं के साथ किशोरावस्था की समस्याओं पर चर्चा करना आवश्यक है।

उच्च शिक्षा व्यवस्था में जनसंख्या और विकास शिक्षा परियोजना के अन्तर्गत देश के सभी सत्रह 'जनसंख्या शिक्षा संसाधन केन्द्रों पर किशोरावस्था की समस्याओं का समाधान करने के लिए व्यक्तिगत/दूरभाष परामर्श केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं। इसी तरह प्रौढ़ शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत भी विद्यालय न जाने वाले किशोरों को किशोरावस्था शिक्षा प्रदान की जा रही है। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में किशोर–किशोरी सम्मेलन और किशोर क्लबों का गठन किया जा रहा है और इस बारे में नव साक्षरों को सरल सुबोध भाषा में साहित्य भी प्रदान किया जा रहा है।

इस तरह हम देखते हैं कि किशोरावस्था शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा किशोरावस्था शिक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, यौन शिक्षा इसका एक अंग मात्र है। किशोरावस्था शिक्षा में व्यक्तित्व निर्माण, सकारात्मक यौन व्यवहार, नैतिक मूल्यों का संरक्षण, परिवार की खुशहाली के लिए किशोरों में तर्कसंगत निर्णय लेने की क्षमता के विकास पर बल दिया जाता है। ❑

(पृष्ठ 34 का शेष) **पर्यावरण तथा आर्थिक विकास में.....**

होने से बचा पाएगा? पर्यावरण के नाम पर संरचनात्मक समायोजनों की बात करना, बाजार अर्थ–व्यवस्था की बात करना, उपभोक्ता अर्थव्यवस्था की बात करना क्या हमारा दो–मुंहापन नहीं है? बौद्धिक संपदा एकाधिकारियों की बहस में उलझी यह नई विश्व अर्थनीति हमें कहां ले जाएगी – आर्थिक विकास की ओर या पर्यावरण विनाश की ओर?

कनाडा की 12 साल की सुजुकी ने जब धरती को आर्थिक विकास के दैत्य से बचाने की दलील में यह कहा – "मैं अपने भविष्य के लिए लड़ रही हूं। मैं दुनिया भर में भूख से बिलखते उन बच्चों की आवाज बनकर आई हूं जिनका रोना कोई नहीं सुनता, मैं उन बेजुबान जानवरों की तरफ से बोल रही हूं जो पृथ्वी पर रोज दम तोड़ रहे हैं। मैं अब बाहर धूप में जाने से डरती हूं क्योंकि ओजोन की परत में छेद हो गया है, सांस लेने में मुझे डर लगता है क्योंकि मैं नहीं जानती कौन–सा जहर हवा में घुला है। मुझे नहीं चाहिए ऐसा आर्थिक विकास "तब लगा जैसे यह अकेली सुजुकी की आवाज नहीं थी – सारा विश्व एक स्वर में यही दोहरा रहा था।

हम अपनी सुविधा के लिए जितने नए आविष्कार करेंगे हमारी सुख शांति उतनी ही समाप्त होती जाएगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा एक पोस्टर निकाला गया है जिसमें यह चित्र है "एक बच्चे की आंख से खून के आंसू गिर रहे हैं" यह कल्पना निश्चित रूप से सही हो सकती है क्योंकि हम सिर्फ प्रदूषण फैलाने लगे हैं। हमारी आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं कर सकती क्योंकि हम उन्हें क्या दे रहे हैं? सिर्फ खून के आंसू।

विकास हो विनाश नहीं

अब योजनाकारों का परम कर्तव्य है कि विकास के इस क्रम में विनाश को न भूलें। अतः हमें प्रकृति के शोषण को कम करने का प्रयास करना होगा अन्यथा हमारा जीवन पानी के बुलबुले की भांति बेवजह समाप्त हो जाएगा। हमारे सारे के सारे विकास ज्यों के त्यों पड़े रह जाएंगे इनका कोई मतलब नहीं निकलेगा। इन्हें देखने वाला कोई नहीं होगा। अतः प्रकृति की रक्षा के लिए हमें भारतीय संस्कृति के सिद्धांत "जियो और जीने दो" का पालन करना होगा एवं गांधीजी के दर्शन "सादा जीवन उच्च विचार" पर चलना होगा। तब हम प्रकृति से प्राप्त निशुल्क उपहार का पूर्ण रूपेण उपयोग कर सकेंगे और तभी खुजराहो के मंदिरों का सांस्कृतिक वैभव तथा दुनिया का अप्रीतम "ताज" दुनिया का "ताज" बना रह सकता है। इसकी चिन्ता सबको करनी है निस्वार्थ होकर। ❑

ग्रामीण बेरोजगारों के लिए गोबर-गोमूत्र आधारित कुटीर उद्योग

अविनाश नागदंश

हरित–क्रान्ति का सच निरन्तर बंजर होते जा रहे खेतों के रूप में आज धीरे–धीरे सबके सामने आता जा रहा है। रासायनिक उर्वरकों और खतरनाक कीटनाशकों के कारण होने वाले नुकसान और भूमिगत जल तक के विनाशकारी स्तर तक होते जा रहे है प्रदूषण ने लोगों की आंखें खोल दी हैं। इसी प्रकार एलोपैथिक दवाओं और रासायनिक सौंदर्य प्रसाधनों के खतरनाक पार्श्व–प्रभावों के कारण इनसे परहेज करने वाले लोगों की संख्या भी दिन ब दिन बढ़ रही है। लोग खेती से लेकर स्वास्थ्य–रक्षा की प्राचीन पारम्परिक विधियों की ओर एक बार पुनः आकृष्ट होने लगे हैं और एक सर्वेक्षण के मुताबिक पारम्परिक दवाइयों, खादों और कीटनाशकों के कारोबार में पिछले पांच वर्षों से प्रति वर्ष तीस प्रतिशत से भी अधिक की दर से वृद्धि हो रही है।

गाय हमारी संस्कृति ही नहीं अपितु ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भी युगों–युगों से मूलाधार रही है। यह स्वास्थ्य हेतु अमृत तुल्य दुग्ध, खेत जोतने तथा परिवहन हेतु बैल ही नहीं प्रदान करती बल्कि इसका गोबर और गोमूत्र भी अपने रासायनिक संघटन के कारण मलशोधक, दुर्गंधनाशक, कीटनाशक, एवं पोषक गुणों से युक्त होता है। इसमें कार्बोलिक एसिड एवं मैंगनीज, सोडियम एवं आयरन पाए जाते हैं, जिसके कारण यह रोगाणुनाशक, विषनाशक अम्लपित्तनाशक और रक्तशोधक होता है। गोमूत्र की इन विशिष्टताओं के कारण आज इनसे अनेक कृषिपयोगी एवं मानवोपयोगी उत्पाद बनाए जा रहे हैं, जिनकी लोकप्रियता क्रमशः बढ़ती जा रही है। ग्रामीण बेरोजगार युवक–युवतियों और भूमिहीन कृषकों–मजदूरों द्वारा बहुत कम पूंजी में एक या कुछ देशी गाय–बैल रखकर कुटीर स्तर पर इन उद्योगों को प्रारम्भ कर अच्छी आय अर्जित की जा सकती है। यहां गोबर–गोमूत्र आधारित कुछ लोकप्रिय एवं सहजतापूर्वक बिकने योग्य उत्पादों के नाम, उनकी उपयोगिता, बनाने की विधि और अनुमानित विक्रय–मूल्य, बेरोजगारों की जानकारी के लिए दिया जा रहा है :

कामधेनु खाद (सूखा) :

काका नेडेप विधि से 100 कि.ग्रा. गोबर से 3 हजार कि.ग्रा. (3टन) गोबर की खाद तैयार की जा सकती है। एक देशी गाय/बैल औसतन यदि 7 कि.ग्रा. गोबर भी देता है तो उससे प्रति वर्ष लगभग 70–75 टन कम्पोस्ट खाद तैयार होती है। इसे अपने प्रयोग के साथ–साथ अन्य कृषकों को बेचा जा सकता है तथा नगरों में किचन गार्डेन, रोज गार्डेन वालों तथा गमलों में फल–फूल–सब्जियां उगाने वालों के प्रयोग हेतु 2,5,10 किलो के पैकेट बनाए जा सकते हैं।

सामग्री : गोबर–100 कि.ग्रा., वानस्पतिक व्यर्थ (सूखे पत्ते, जड़ें, डंठल इत्यादि)–1500 कि. ग्रा, सूखी छनी हुई मिट्टी–1750 कि.ग्रा., पानी–1500 से 2000 लीटर (मौसमानुसार).

बनाने की विधि : इस खाद को अच्छा और स्तरीय बनाने हेतु 10 फुट लम्बा, 6 फुट चौड़ा तथा 3 फुट गहरा पक्का हौदा बनाया जाता हैं। उपरोक्त सभी सामग्रियां आपस में अच्छी तरह मिलाकर इस हौदे को पूरा भर दिया जाता है। इस मिश्रण को गोबर या मिट्टी से लेपकर हौदे को अच्छी तरह से बन्द कर दिया जाता है। तीन से चार माह तक यह सारी सामग्री उसी हौदे में पड़ी रहती है और उत्तम कम्पोस्ट खाद तैयार हो जाती है, जिसका वजन लगभग तीन टन होता है। यदि खाद को किचेन गार्डेनिंग और नर्सरियों को बेचना हो तो इसे छानकर 2,5,10 कि.ग्रा. के या आवश्यकतानुसार पैकेट बनाए जा सकते हैं। इस खाद को बनाने में सिवा श्रम के, देहातों में, कोई लागत नहीं आती।

अनुमानित बिक्री–मूल्य : 2 किलो का पैकेटः 10 से 15 रुपये (स्थानानुसार), 50किलो की बोरी–150 से 200 रुपये।

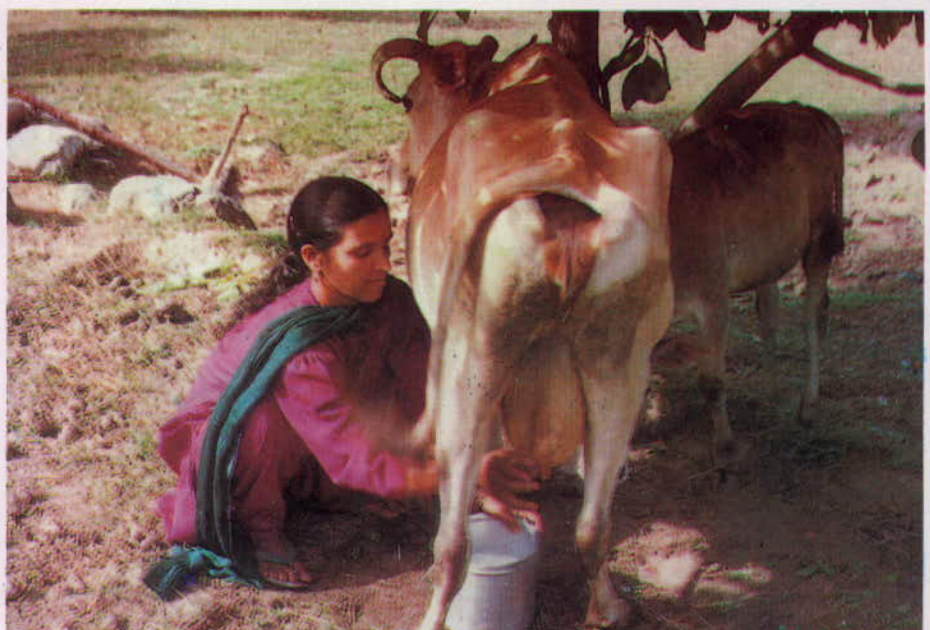

कामधेनु खाद व कीटनाशक (तरल) :

सामगी : गोमूत्र–10 कि.ग्रा., नीम की पत्ती– 2.5 कि.ग्रा.

बनाने की विधि : वृद्ध गाय, बैल तथा सांड के मूत्र में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है। नर जाति का मूत्र अधिक तीक्ष्ण होता है। किसी साफ पात्र में गोमूत्र रखकर उसमें 15 दिनों तक नीम की पत्तियां सड़ाई जाती हैं। 15 दिन पश्चात् पत्तियों को मसलकर छान लिया जाता है। यह द्रव एक उत्तम कीटनाशक औषधि के साथ–साथ पत्तियों के माध्यम से कई पोषक तत्वों की आपूर्ति करने के कारण खाद का काम भी करता है। एक लीटर कीटनाशक औषधि को 100 लीटर जल में मिलाकर पौधों पर काफी कम खर्च में छिड़काव हो जाता है।

अनुमानित बिक्री–मूल्य: 100 मिलीलीटर– 10रुपये।

कामधेनु एक्जिमा साबुन :

यह स्नान का साबुन नहीं है। शरीर में जिस जगह एक्जिमा, दाद, गंडल कुष्ठ (सिरोसिस आफ स्किन) सदृश चर्मरोग हो, उसी स्थान पर इस साबुन को लगाएं, शरीर के अन्य भाग में नहीं। इसे चेहरे तथा आंख में नहीं लगाना चाहिए।

सामग्री : मुल्तानी मिट्टी या गंगा–तट की मिट्टी–1 किलोग्राम, लाल गेरू–200 ग्राम, गाय का ताजा गोबर–1250 ग्राम, नीला थोथा– 30 ग्राम; नीम के पत्ते–आवश्यकतानुसार।

बनाने की विधि : मुल्तानी मिट्टी या गंगा–तट की मिट्टी, लाल गेरू और नील थौथे को खूब महीन पीसकर आपस में मिला लें और इसे ताजे गाय के गोबर में सान लें। अब आवश्यकतानुसार नीम की पत्तियों का काढ़ा बनाकर छान लें। इस काढ़े से उपरोक्त मिश्रण को गीलाकर डाई या सांचे में दबाकर टिकिया बनाकर धूप में सुखा लें। अनेक चर्मरोगों के लिए अत्यंत गुणकारी कार्बोलिक साबुन तैयार है।

बिक्री–मूल्य : 100 ग्राम–6 से 8 रुपये (अनुमानित).

यदि इस साबुन का प्रयोग करने पर त्वचा में जलन होने लगे तो जलन वाले स्थान पर नारियल का तेल अथवा देशी घी लगा लेना चाहिए।

कामधेनु मरहम :

उपयोग : त्वचा पर दाद, खाज, एक्जिमा, सिरोसिस एवं दूषित घाव पर लाभप्रद। आंखों पर न लगाएं।

रोगग्रस्त अंग या स्थल को गोमूत्र से धोकर दिन में 2–3 बार लगाएं।

सामग्री : गोबर का महीन चूर्ण (कपड़े से छना) –500 ग्राम, गेरू मिट्टी–400 ग्राम, गौमूत्र क्षार–100 ग्राम, नीला थोथा–200 ग्राम, पेट्रोलियम जेली–1 कि.ग्रा.।

बनाने की विधि : नीला थोथा पीसकर मंद आंचपर, छोटी कढ़ाही में हल्का भून लें। रंग सफेद होने पर उतार लें। फिर सूखी सभी चीजों का खूब महीन चूर्ण बनाकर पेट्रोलियम जेली में मिलाकर खरल में खूब रगड़ें। फिर आवश्यकतानुसार शीशी में भर लें। कभी कोमल स्थान पर लगाने से जलन करे तो घी मिलाकर हल्का करें।

अनुमानित बिक्री–मूल्य : 10 ग्राम–8 से 10 रुपये।

कामधेनु केश निखार (शैम्पू) :

कामधेनु केश–निखार का नियमित प्रयोग बालों को काला, स्वस्थ, सुन्दर और दीर्घायु बनाता है।

सामग्री : गोमूत्र–दो किलोग्राम, अरीठा– 50 ग्राम, कपूर डली का–15 ग्राम, अजवायन का सत्त–10 ग्राम।

बनाने की विधि : अरीठा बारीक पीसकर गोमूत्र में औटाएं। 500 ग्राम शेष बचने पर छानकर रखें। अजवायन के सत्त को एक अलग शीशी में थोड़ी देर तक रखकर हिलाएं, फिर शेष छने गौमूत्र में मिला दें। सुविधा और आवश्यकतानुसार, साफ शीशियों में भर कर पैक कर लें।

अनुमानित बिक्री मूल्य : 100 मि.ली. 10 से 12 रुपये।

कामधेनु दर्दहरण तेल :

बाजार में बिकने वाले विविध लाल तेलों से ज्यादा गुणकारी यह तेल, शरीर में किसी जगह दर्द हो, मालिश करके सेक देने से आराम पहुंचाता है।

सामग्री : गोबर का रस (कपड़े से छना) – 250 मि.ली., गौमूत्र–500 मि.ली., तिल्ली का तेल–1 लीटर, अजवायन का सत्त–10 ग्रा., कपूर डली वाला–25 ग्रा.।

बनाने की विधि : पहले कपूर और अजवायन के सत्त को एक साथ पीसकर शीशी में भर लें। इसे फिर तिल्ली के तेल में खूब हिला–हिलाकर मिलाएं। फिर एक कढ़ाही में गौमूत्र और गोबर रस खूब मिलाकर, मसलकर मजबूत कपड़े से छानें। इस छने रस को तेल में मिलाकर मंद–मंद आंच पर कढ़ाही में तब तक पकाएं जब तक सिर्फ तेल रह जाए। फिर ठंडा करके छान लें। फिर इसमें कपूर का तेल मिलाकर खूब फेंट दें और विविध नाप की विभिन्न शीशियों में भर लें।

अनुमानित बिक्री मूल्य : 10 मि.ली. – 20 रुपये।

कामधेनु धूपबत्ती :

उपयोग : देवपूजन, उपासनास्थली के लिए। वायु प्रदूषण पर रोक, वायुशुद्धि, स्वास्थ्य रक्षण में उपयोगी, और रोगाणुनाशक और मन को शांतिदायक होता है।

सामग्री : गीला गोबर–1 कि.ग्रा., खस का कटा हुआ बारीक बुरादा या आरा मशीन का बुरादा–500 ग्राम, चावल (अक्षत)–200 ग्राम. तथा गाय का घी–200 ग्रा.।

बनाने की विधि : गोबर के अलावा शेष सब को आपस में मिलाकर खूब मसलें ताकि घी मिल जाए। फिर इस मिश्रण को गीले गोबर में डालकर खूब मसलें। हाथ से बत्तियां बनाएं अथवा जिस लम्बाई और मोटाई की बत्ती बनानी है, उस नाप की अल्युमिनियम या प्लास्टिक की नली लेकर इस सम्पूर्ण मिश्रण को गौमूत्र से गीला करके भर लें। लकड़ी छड़ से धक्का देने पर बत्तियां नाली से बाहर निकल आती हैं। इन्हें धूप में सुखाकर गत्ते अथवा टिन के डिब्बों में पैक कर दें।

अनुमानित बिक्री मूल्य : एक पैकेट (10 धूपबत्ती) –15 रुपये.

बेरोजगार व्यक्ति उपरोक्त उत्पाद उत्पादित कर सकते हैं। बेरोजगारों की सहकारी समितियां यदि इन उत्पादों का उत्पादन करें, तो पैकिंग आदि की आकर्षक व्यवस्था कर सकती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आने वाले दिनों में इन उत्पादों की मांग में पर्याप्त वृद्धि होगी तथा सरकारी सहयोग मिले तो इनके निर्यात की भी काफी उज्ज्वल सम्भावनाएं हैं। ❑

उज्जैन जिले में बंजर भूमि की बदलती तस्वीर

वाटरशेड कमेटियों ने किया कायाकल्प

हरिशंकर शर्मा

वर्षों से अनियंत्रित चराई के कारण यहां की जमीन की संरचना ऐसी थी जिसमें वर्षा जल आसानी से नई रिसता था। जल संग्रहण व्यवस्था के अभाव में लगभग 150 हेक्टेयर में फैली पहाड़ियों पर घास भी बड़ी मुश्किल से उग पाती थी।

एकीकृत परती भूमि विकास योजना के तहत इन बंजर पहाड़ियों की तस्वीर बदलने का प्रयास अप्रैल 1999 से प्रारम्भ हुआ। परियोजना के गांव नरवर, मुंजाखेड़ी, गांवड़ी, माधेपुरा, पिपलोदा, द्वारकाधीश बोलासा–भंवरी, हरनावदा, कचनारियो, सेमल्या नसर और पालखंदा का कुल क्षेत्रफल 6,986 हेक्टेयर है और अधिकांश पर खेती होती है। यह तय किया गया कि इन माइक्रोवाटर शेड क्षेत्र के ग्रामीण अपनी समितियां खुद बनाएं और खुद तय करें कि भूजल संवर्धन और भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए क्या करना है। यद्यपि लोगों को यह समझाने में थोड़ा समय लगा कि वे परती भूमि पर अपने पशुओं को चरने के लिए नहीं छोड़ें, अपने खेतों, कुओं के आसपास पौधारोपण करें और जैसे भी बन पड़े वर्षा जल को बहकर न जाने दें। उसे रोक कर अपने गांव में ही जमीन के नीचे उतारें। इसके सरल उपाय जो शुरुआत में कठिन लगते थे अब लोकप्रिय हो रहे हैं। खेत में पोखर, कुंडी, कुईयों, द्वारा भूजल रिचार्ज और वर्षा जल से कुओं व बावड़ियों का रिचार्ज अभियान जोर पकड़ रहा है।

उपचार कार्य

इन बंजर पहाड़ियों पर 60 60 से.मी. की 16 हजार रनिंग मीटर और 45 45 से.मी. की 62 हजार रनिंग मीटर कंट्रर ट्रेंच खोदी गई। ऊंचाई पर तालाब बनाए गए और वर्षा जल को बहने से रोक लिया गया। भूमिगत जल रिसाव से कुंओं व ट्यूबवेलों का जलस्तर बढ़ा और लोगों का विश्वास भी जलग्रहण गतिविधियों पर जम गया। बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए सर्वप्रथम उपचार कार्य हाथ में लिए गए। पहाड़ी पर अलग–अलग साइज की खोदी गई इन ट्रेंचों के माध्यम से प्रतिवर्ष लाखों

(शेष पृष्ठ 47 पर)

बहुपयोगी लहसुन

जग नारायण

कुछ अपवादों को छोड़कर आम भारतीय परिवारों के भोजन में मसाले के रूप में नियमित रूप से प्रयोग होने वाला लहसुन अत्यन्त उपयोगी है। दुनिया के अनेक देशों में बहुत पहले से ही प्रयोग में आ रही इस कृषि सम्पदा की विशेषताओं के चलते ही एलौपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी और यूनानी सहित दुनिया की अन्य कई चिकित्सा पद्धतियों में इसकी व्यापक उपयोगिता प्रमाणित और वर्णित है। लशुन, रसीन, उग्रगन्ध, महौषध, अरिष्ट, म्लेझकन्द, यवनेष्ट और रसनोक इसके संस्कृत नाम हैं। हिन्दी में इसे लहसन, लहसुन, बंगला में रसून, मलयाली में रसूण, गुजराती में लसण, कर्नाटकी में बेल्लूल्लि, फारसी में सीर, अरबी में सुमइस्कूदीयन, अंग्रेजी में गरलिकारूट तथा लैटिन में एलियन सटाइवम कहते हैं। लिलियेसिस परिवार से सम्बद्ध इस फसल का वानस्पतिक नाम "एलियम सटाइबा" है।

गुण और विशेषताएं

लहसुन पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक स्निग्ध, पाचक, दस्तावर, मग्नस्थान को जोड़ने वाला और कण्ठशोधक है। यह पित्त और रुधिर को बढ़ाने वाला, बल, वर्ण के लिए उत्तम है मेधा के लिए हितकारी, नेत्रों के लिए सुखदायक, हृदयरोग, जीर्ण, ज्वर, मलबन्ध, गुल्म, अरुचि, खांसी, सूजन, बवासीर, कुष्ठ, मंदाग्नि, क्रिमी, वात, स्वांस तथा कफ रोगों को नष्ट करने वाला है। लहसुन में अम्लरस को छोड़कर

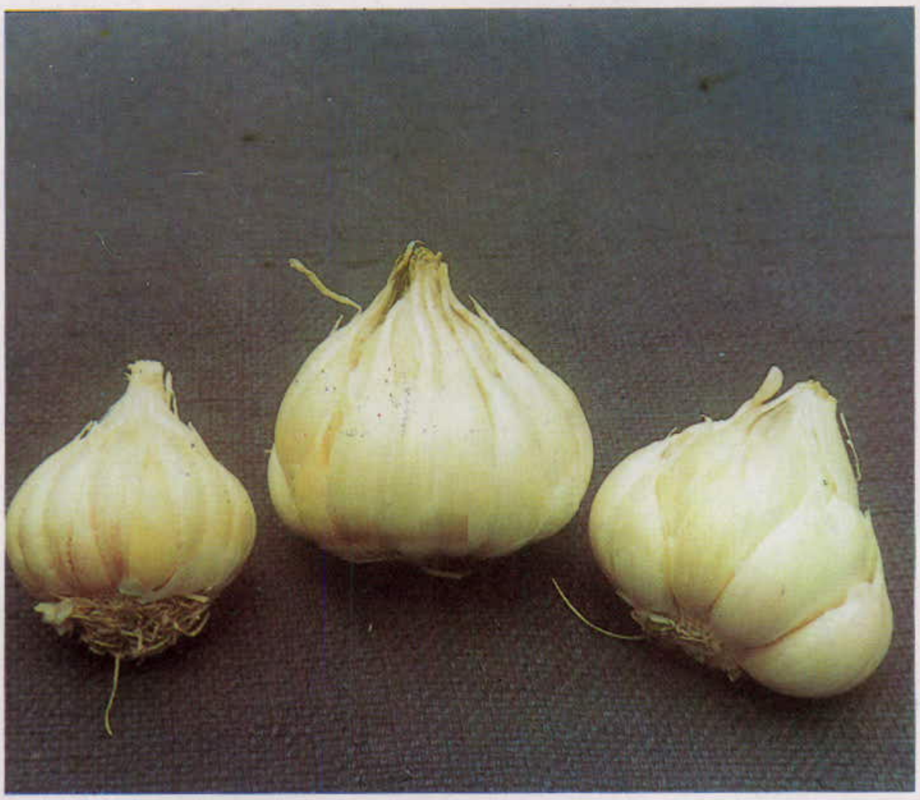

शेष सभी पांच रस पाएं जाते हैं। इसकी जड़ में चरपरा, पत्तों में कड़वा, नाल में कसैला, नाल के अग्रभाव में क्षार तथा बीजों में मधुर रस पाया जाता है।

एन्टी बायोटिक और ऐन्टीसेप्टिक गुणों से भरपूर लहसुन दुनिया के अन्य देशों के नागरिकों का अच्छा दोस्त और घरेलू डाक्टर भी है। यूनान, मिस्र, चीन इजराइल सहित अनेक प्राचीन देशों के लोग लम्बे समय से इसके औषधीय गुणों से अवगत थे। वे आज भी इसका उपयोग करते चले आ रहे हैं। अमरीका के मूल निवासी (रेड इन्डियन्स) लहसुन के औषधीय गुणों से व्यापक रूप से परिचित थे। वे सांप काटने से लेकर आंतों की तमाम बीमारियों में इस पर ही निर्भर रहा करते थे। इंग्लैण्ड में प्राचीन काल में खसरा के रोगी के पैर में इसकी पट्टी बांधी जाती थी। आज भी जर्मनी में लाखों लोग लहसुन से बनी दवाओं का नियमित सेवन करते हैं।

बरेली के इज्जत नगर स्थित भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने अभी हाल ही में विषैली धातु सीसा के विषैले प्रभाव से मुक्ति में लहसुन को सक्षम पाया। रांची स्थित बिरसा कृषि विश्वविद्यालय के पादप रोग वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर लहसुन की फसल को कीटनाशक गुणों से सम्पन्न बताया है।

रासायनिक स्थिति

लहसुन में 5.2 प्रतिशत जल, 17.5 प्रतिशत प्रोटीन, 0.6 प्रतिशत चर्बी, 3.2 प्रतिशत खनिज, 1.9 प्रतिशत रेशा, 0.1 प्रतिशत कैल्शियम, 71.4 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 1.1 प्रतिशत फास्फोरस पाया जाता है। प्रत्येक 100 ग्राम लहसुन में 175.0 मि.ग्रा. निकोटिन अम्ल, 12.0 मि.ग्रा. विटामिन सी (एस्कार्बिक एसिड), 0.62 मि.ग्रा. विटामिन बी भी पाया जाता है।

विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में लहसुन

आधुनिक चिकित्साशास्त्र (एलोपैथी) के जनक हिप्पोक्रेटस ने आंतों की बीमारियों में लहसुन के प्रयोग की सलाह दी है। आयुर्वेद में बाणभट्ट ने तो इसे साक्षात अमृत से उत्पन्न होने वाला बताया है। होम्योपैथी में लहसुन से बनी "एलियम सटाइम" का क्षय रोग, मानसिक रोग, कब्ज, बलगम, बुखार और ठण्ड लगने पर प्रयोग किया जाता है।

लहसुन के कुछ उपयोगी नुस्खे और प्रयोग

- क्षय रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इसकी पांच–छः कलिकाएं नियमित खाने पर रोग से मुक्ति मिलती है।
- कोलस्ट्राल जनित हृदय रोग में लहसुन के प्रयोग से कोलस्ट्राल से मुक्ति मिलती है।
- लहसुन के साथ नीबू के रस को बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर यदि दो घण्टे तक बालों में लगाए रखा जाये, तो सिर की जुएं मर जाती हैं।
- लहसुन वातनाशक है, यदि इसकी 5–6 कलिकाओं को एक पाव दूध में नियमित उबाल कर सेवन करने के साथ ही तिल के तेल में पकाकर उस तेल से मालिश की जाए तो गठिया से आराम मिल जाता है।
- चम्मच भर लहसुन का रस उल्टी (कै) में तुरन्त आराम पहुंचाता है।
- अजीर्ण, अरुचि और अफारा में 5–6 लहसुन की कलियां नियमित रूप से कुछ दिन तक खाने से तत्काल आराम मिलता है।
- मधुमेह रोग में नियमित 5–6 लहसुन की कलियां लाभ पहुंचाती हैं।
- ठंड लगने पर लहसुन को तेल में उबालकर उसकी मालिश से आराम मिलता है।
- प्रातःकाल एक–दो लहसुन की कलिकाओं को छीलकर उसके किनारों को काटकर पानी से निगल जाने से गैस रोगियों को आराम मिलता है।
- शुद्ध सरसों के तेल में मंद आग पर काली पड़ने तक उबाले गए लहसुन वाले तेल को छान कर रख लें, इस तेल से 10–15 मिनट तक बालों की मालिश करने के बाद बालों को बांधकर सो जाएं। दो सप्ताह में बालों का झड़ना रुक जाएगा।
- शरीर के किसी भी हिस्से में होने वाले दाद में लहसुन रगड़ने या पीस कर वेसलीन में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।
- कच्चे लहसुन की कलियों को सुबह–शाम गर्म पानी से चबाकर खाने पर चर्बी और मोटापे से मुक्ति मिलती है।
- लहसुन के रस की कुछ बूंदें मुंह में डालने से मिर्गी के रोगी को होश आ जाता है।
- प्रसव के बाद होने वाले प्रसूति ज्वर में सुबह शाम लहसुन की दो कलिकाएं खाने से आराम होता है।

इजराइल सहित कई अन्य प्राचीन देशों में आज भी मान्यता है कि लहसुन दुष्ट आत्माओं से बच्चों की रक्षा करता है। ❑

(पृष्ठ 45 का शेष) **उज्जैन जिले में बंजर भूमि की.....**

क्यूंसेक वर्षा जल भूमिगत जल में मिलेगा और भू–जल संवर्धन होगा। इसी के साथ नरवर परियोजना क्षेत्र में पहले वर्ष ही खोदी गई ट्रेंचों के माउंट पर रतनजोत का बीजारोपण करने का प्रयोग किया गया। प्रयोग सफल रहा और आज हजारों रतनजोत के पौधे क्षेत्र की हरियाली में वृद्धि कर रहे हैं। इनके बीजों को बेचने से वाटरशेड समितियों को आने वाले एक दो वर्षों में अतिरिक्त आमदनी मिलना प्रारंभ हो जाएगी।

पक्षी ने सबसे पहले बदलाव को अपनाया

बंजर पहाड़ियों पर निर्मित कुओं, तालाबों में पानी भरने से न केवल मनुष्य बल्कि पशु–पक्षी भी प्रसन्न हैं। खरगोश और लोमड़ी जैसे चिरपरिचित जानवर इस क्षेत्र में बढ़ती घास और रतनजोत में घूमते दिखाई पड़ते हैं वहीं समर्पित दाम्पत्य जीवन के प्रतीक दो सारस के जोड़ों ने इस क्षेत्र में स्थायी घर बसा लिया है। इन दो जोड़ों में से एक नरवर तालाब के आसपास और दूसरा पिपलौदा द्वारकाधीश के तालाब के आसपास विचरते दिखाई पड़ जाते हैं। पिलौदा के सारस परिवार में तो वृद्धि हुई है। सब कुछ ठीक रहा तो इनके परिवार में आए दो नए मेहमान शीघ्र बड़े होंगे। इन सारसों का आना गांव वालों के लिए कौतूहल का विषय है, बदलाव की एक बड़ी घटना है।

जन सहभागिता से बंजर भूमि में आ रहे सुखद बदलाव से गांव का हर वासी उत्साहित है। सदियों से जमीन का महत्व जानने वाला किसान अब जल और जंगल का महत्व भी समझने लगा है। उसकी जीवन–शैली में पानी रोकना और वृक्ष की सुरक्षा करने जैसी बातें स्थान पाने लगी हैं।

तालाबों से बदली जीवन शैली

नरवर और पिपलौदा की पहाड़ियों पर अप्रैल 2000 की गर्मियों में तीन नए परलोकेशन तालाब बनाए गए। 1999 में नरवर के बड़े तालाब का जीर्णोद्धार किया गया था। हरनावदा गांव के तालाब का भी जीर्णोद्धार किया गया और गांवडी के सिंचाई विभाग के तालाब का बिगड़ा हुआ स्लुज गेट वाटरशेड कमेटी ने बदल दिया।

इन सबका परिणाम सुखद रहा। गांवडी तालाब में सिंचाई के लिए अधिक पानी मिला। कृषकों ने चने की बजाय गेहूं की फसल ली। इसी तरह नरवर और पिपलौदा के लोगों को उम्मीद है कि नए तालाब बनने से उनके कुएं व ट्यूबवेल ज्यादा पानी देंगे और फसल चक्र में बदलाव आएगा।

नरवर वाटरशेड क्षेत्र में सन् 2000 में क्लोन पौधों के रोपण का जिले में पहला प्रयोग किया गया। यूकिलिप्टस, सागोन, खमेर, पापुलर के लगभग दो हजार पौधे नरवर पिपलौदा व माधोपुर की पहाड़ियों पर रोपे गए हैं। इन्दौर की वन अनुसंधान नर्सरी से प्राप्त किए गए, ये क्लोन पौधे सामान्य पौधों से पचास प्रतिशत तेज गति से बढ़ते हैं तथा इनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता भी सामान्य पौधों से अधिक पाई जाती है।

इसी तरह नरवर वाटरशेड के ग्राम पिपलौदा द्वारकाधीश में औषधि पौधों की खेती का प्रयोग गत वर्ष किया गया जो सफल रहा। पिपलौदा से शुरू की गई औषधि पौधों की खेती पूरे संभाग में लोकप्रिय हो रही है। मालवा का किसान इस खेती को सोयाबीन के विकल्प के रूप में देख रहा है। वाटरशेड गतिविधियों से क्षेत्र में 20 हजार मानव दिवस का रोजगार भी उपलब्ध करवाया गया है। अब इस क्षेत्र में खेतिहर मजदूरों को साल भर रोजगार उपलब्ध रहता है। ❑

रेशम योजना से हजारों परिवारों को रोजगार

प्रो. बृजनाथ सिंह*

आज हमारा देश बेकारी की समस्या से ग्रसित है। रोजगार के नए विकल्पों की तलाश जारी है। भारत सदृश कृषि प्रधान और विकासशील देश कृषि का उद्योगीकरण और व्यवसायीकरण करके बेकारी की समस्या का हल कर सकते हैं। इसी दिशा में आज हमारे कृषि वैज्ञानिक आर्थिक तंगी से पीड़ित किसानों को नगदी फसल उगाने की सलाह दे रहे हैं। इससे उनका शहर की ओर पलायन भी थमेगा।

हमारे देश में मसाला, औषधीय व सुगंधित पौधों की खेती, रेशम, मधुमक्खी पालन, सोयाबीन की खेती और कपास की खेती से कृषक मालामाल हो सकते हैं। मध्य प्रदेश में पिछले 5 वर्षों से रेशम उत्पादन के लिये राज्य सरकार ने विशेष प्रयत्न किए हैं। जापान के सहयोग से राज्य के बिलासपुर, कोरिया, विदिशा, सरगुजा, जिले में 750 करोड़ रुपये की लागत से 46,810 परिवारों को रोजगार मिल रहा है। इसके अलावा प्रदेश सरकार ने रेशम उत्पादन को बढ़ावा देने के लिये शासन स्तर पर *रेशम विकास और विपणन सहकारी संघ* तथा *डिजाइन और उत्पादन बैंक* की स्थापना भी की है।

प्रारंभ में रेशम कृषि पालन के प्रति कृषक उदासीन थे मगर धीरे–धीरे वे अत्यधिक लाभ को देखते हुए इस अपरम्परागत कृषि के प्रति अब आकर्षित हो रहे हैं। यही स्थिति महिलाओं की भी है। अब वे भी इस रोजगार अभियान के प्रति आकर्षित हो रही हैं। प्रदेश के सरगुजा, रायगढ़ और बिलासपुर जिलों में सात हजार हैक्टेयर भूमि में रेशम कृमि (कीड़े) पालन का कार्य चल रहा है। चार हजार हैक्टेयर में टसर और तीन हजार हैक्टेयर में शहतूत का रोपण किया गया है। इस क्षेत्र में करीब 37 हजार पौधों का रोपण किया गया है। करीब दस हजार परिवार टसर वृक्षारोपण के जरिये रेशम विकास से लाभान्वित होंगे। इसी प्रकार प्रदेश के 11 जिलों के 32 रेशम केन्द्रों पर इण्डो–जापानीज साशीसेरिटेन कंपनी के सहयोग से उन्नत जाति के रेशम के पालन का काम हाथ में लिया गया है।

रेशम के कीड़े पालने में जुटा एक लाभार्थी

इस रेशम नवाचार परियोजना से प्रदेश में रेशम की गुणवत्ता के विकास के साथ–साथ हजारों परिवारों को रोजगार मुहैया होने की सम्भावनाएं बढ़ गयी हैं जिससे कृषकों और भूमिहीन मजदूरों के जीवनस्तर में भी सुधार होगा। राज्य में रेशम परियोजना को बढ़ावा देने के लिए 1997 में गठित म.प्र. राज्य रेशम उत्पादन एवं व्यापार सहकारी संघ भी कोकून उत्पादन, संकलन, धागा तथा वस्त्र उत्पादन और डिजाइन और उत्पाद विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। साथ ही संघ विपणन और कृषकों को बेहतर मूल्य दिलाने की कोशिश भी कर रहा है।

इसके अतिरिक्त प्रदेश के रेशम कृषकों को कर्नाटक के अन्तर्राज्यीय भ्रमण पर ले जाया जाता है, जिससे कृषक प्रेरणा ले सकें। अभी तक कृषकों को बंगलौर स्थित सिल्क एक्सचेंज सेन्टर, वाय वेलेण्टाईन कोकन मार्केट, स्टेट सेरीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट और थाल चागुप्बे गांव का भ्रमण कराया गया। इसके अलावा रेशम प्रशिक्षण एवं शोध केन्द्र मैसूर, कोकून मार्केट रामनगरम और नेशनल सिल्क प्रोजेक्ट सेन्टर का भी अवलोकन कराया गया।

इस प्रकार प्रदेश में रेशम नवाचार परियोजना गरीबी निवारण में रामबाण साबित हो रही है। भूमिहीन कृषकों और काम की इच्छुक अनपढ़ महिलाओं के लिए तो यह परियोजना दरिद्र के लिये नारायण की कृपा और वरदान से कम नहीं है। दरअसल, प्रदेश में अभी यह परियोजना शैशवास्था में है। ऐसी स्थिति में इसके विकास की व्यापक संभावनाएं हैं। इसी को कहते हैं :–

हिम्मते मर्द, मदद खुदा ❑

अंत्योदय अन्न योजना प्रारम्भ

अंत्योदय अन्न योजना का प्रधानमंत्री ने 25 दिसम्बर 2000 को नई दिल्ली में अपने निवास स्थान से शुभारम्भ किया। इस अवसर पर ग्रामीण विकास मंत्री श्री वेंकैया नायडू और खाद्य, उपभोक्ता और सार्वजनिक वितरण मामलों के मंत्री श्री शांता कुमार मौजूद थे।

देश के गरीब से गरीब व्यक्ति के हितों को ध्यान में रखते हुए सभी को भोजन सुरक्षा प्रदान करने, देश से भुखमरी पूरी तरह मिटाने और सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार करने जैसे मुद्दों को राष्ट्रीय जनतांत्रिक सरकार की कार्यसूची में महत्वपूर्ण स्थान मिला हुआ है। अंत्योदय अन्न योजना इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखकर शुरू की गई है।

एक नमूना सर्वेक्षण के अनुसार देश की पांच प्रतिशत आबादी को साल में काफी दिन दो जून के भोजन के बिना रहना पड़ता है क्योंकि उनके पास दो जून का अनाज खरीदने के लिए पैसे नहीं होते। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को समाज के इस वर्ग के लोगों के लिए ज्यादा फायदेमंद बनाने के उद्देश्य से इन लोगों को मिलने वाले अनाज पर सब्सिडी को काफी बढ़ाया जाएगा जिससे इन लोगों को अनाज बहुत सस्ते दामों पर मिलेगा।

अंत्योदय अन्न योजना के तहत सबसे गरीब एक करोड़ परिवारों के पांच करोड़ सदस्यों को प्रति माह 25 किलोग्राम अनाज प्रति व्यक्ति दिया जाएगा। ऐसे एक करोड़ परिवारों की पहचान कर ली गई है। इन लोगों को अनाज उस दाम से भी कम कीमत पर दिया जाएगा जिस पर गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वाले परिवारों को दिया जाता है। इन लोगों को गेहूं 4 रुपये 15 पैसे प्रति किलोग्राम के स्थान पर दो रुपये प्रति किलोग्राम और चावल पांच रुपये 65 पैसे प्रति किलोग्राम के बदले तीन रुपये प्रति किलोग्राम के भाव पर दिया जाएगा।

अंत्योदय अन्न योजना पर पूरे वर्ष में 2300 करोड़ रुपये सब्सिडी के रूप में खर्च होंगे।

आर एन. / 708 / 57
डाक–तार पंजीकरण संख्या डी (डी एल) 12057 / 2001
आई.एस.एन.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना के अधीन डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में
डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/2001
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to Post without pre-payment of DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली –110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू –30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II, नई दिल्ली–20 संपादक: बलदेव सिंह मदान